ISSN : 2456-8856

पंजीयन संख्या RNI No.: MPHIN/2002/9510 डाक पंजीकृत क्रमांक मालवा डिवीजन/204/2021-2023 उज्जैन (म.प्र.)

UGC Care Listed and Peer Reviewed Referred Bilingual Monthly International Research Journal

प्रेषण दिनांक 30 पृष्ठ संख्या 28

आश्वस्त

वर्ष 24, अंक 221 मार्च 2022

अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस की शुभकामनाएँ

संपादक – डॉ. तारा परमार

भारती दलित साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश, उज्जैन की अन्तर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका

वर्ष : 24 अंक 221
मार्च 2022

आश्वस्त

(सन् 1983 से निरंतर प्रकाशित)

RNI No.: MPHIN/2002/9510
ISSN : 2456-8856

भारती दलित साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश, उज्जैन (पंजीयन क्रमांक 2327 दिनांक 13/05/1999) की मासिक पत्रिका

संस्थापक सम्पादक
डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी

संरक्षक
सेवाराम खाण्डेगर
11/3, अलखनन्दा नगर, बिड़ला हॉस्पिटल के पीछे,
उज्जैन मो.: 98269-37400

परामर्श
आयु. सूरज डामोर IAS
पूर्व सचिव-लोक स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण वि.
म.प्र.शासन, भोपाल मो. 094253-16830

सम्पादक
डॉ. तारा परमार
9-बी, इन्द्रपुरी, सेठी नगर, उज्जैन-456010
मो. 94248-92775

सम्पादक मण्डल :
डॉ. जयप्रकाश कर्दम, दिल्ली
डॉ. खन्नाप्रसाद अमीन, गुजरात
डॉ. जसवंत भाई पण्ड्या, गुजरात
डॉ. शैलेन्द्र कुमार शर्मा, म.प्र.

कानूनी सलाहकार
श्री खालीक मन्सूरी एडव्होकेट, उज्जैन

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	अपनी बात	डॉ. तारा परमार	03
2.	तमिल के 'एक दलित अफसर की मृत्यु' उपन्यास में जातीय संघर्ष	डॉ. पी. सरस्वती	04
3	'एक चादर मैली सी' में नारी विमर्श	डॉ. सोनिया माला	06
4.	डॉ. भीमराव अम्बेडकर और महात्मा गाँधी के वर्ण व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. सतीश कुमार वर्मा	11
5.	दलित कविताओं में चित्रित प्रतिरोध का स्वर	डॉ. रीना कुमारी	13
6.	निराला के साहित्य में भक्ति एवं दर्शन	दिनेश्वर कुमार महतो	16
7.	Experiences of being 'The Dalit' : An Analysis of Urmila Pawar's The Weave of My Life, A Dalit Woman's Memoirs	Ripunjoy Bezbaruah	18
8.	'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में नारी सशक्तिकरण	रश्मि सिंह (शोधार्थी)	24

UGC Care Listed Journal

खाते का नाम – आश्वस्त (Ashwast)
खाते का नं.– 63040357829
बैंक – भारतीय स्टेट बैंक,
शाखा– फ्रीगंज, उज्जैन (Freeganj, Ujjain)
IFS Code - SBIN0030108

Web : www.aashwastujjain.com
E-mail : aashwastbdsamp@gmail.com

एक प्रति का मूल्य	:	रुपये 15/-
वार्षिक सदस्यता शुल्क	:	रुपये 150/-
आजीवन सदस्यता शुल्क	:	रुपये 1,500/-
संरक्षक सदस्यता शुल्क	:	रुपये 10,000/-

विशेष : सम्पादन, प्रकाशन एवं प्रबंध अवैतनिक तथा पत्रिका में प्रकाशित विचारों से सम्पादक-मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। विवाद की स्थिति में न्यायालय क्षेत्र उज्जैन रहेंगा।

अपनी बात

एक महिला अपने आप में सम्पूर्ण है, वह सम्पूर्ण शक्ति का केन्द्र है। वह सदैव ही ऊर्जा से ओत–प्रोत रही है, उसके अंदर सृजन, पोषण और परिवर्तन की ताकत है। नारी नारायणी, कल्याणी और काली भी है। यह सुनकर और पढ़कर कितना अच्छा लगता है लेकिन समय और परिस्थिति की बदलती मान्यताओं ने उसके रूप को ही नहीं, स्वरूप को बदला जरूर है, परन्तु उसके महत्व को सैद्धांतिक रूप से तो सदा स्वीकार किया गया है, व्यवहारिक रूप से नहीं। विगत वर्षों में महिलाओं के जीवन के रूप में महत्वपूर्ण बदलाव हुए हैं। आधुनिक महिला अब घर की चारदीवारी से बाहर निकलकर हर क्षेत्र में अपनी क्षमता और उपयोगिता को महसूस कर रही है। साथ ही वे घर और कार्य क्षेत्र दोनों स्थानों पर लैंगिक समानता और न्याय की मांग भी कर रही है।

महिला सशक्तिकरण के एजेंडे में सभी स्थानों पर महिलाओं की सुरक्षा का मामला अत्यंत महत्वपूर्ण है। कार्यस्थल पर उनके यौन उत्पीड़न के विरुद्ध कानून, ऑनलाइन शिकायत प्रणाली, 181 महिला हेल्पलाइन, पैनिक बटन आदि सशक्तीकरण यात्रा में महिलाओं की सुरक्षा करने के लिए तैयार है। फिर भी महिलाओं की समस्याएं मुंह बायें खड़ी है। महिलाओं की समस्या मानव समाज और सभ्यता की एक बहुत जटिल समस्या है। आदिकाल से ही उसे मुश्किलों का सामना करना पड़ा है। महिला के विरुद्ध अत्याचार और उसके विकास की बाधाएं मानव की सहजवृत्ति का परिचायक नहीं है, एक रुग्ण मानसिकता, कुण्ठा और विकृति का प्रतीक है।

ग्राम पंचायत काननू बनने के बाद उसमें जन–प्रतिनिधि के रूप में चुने जाने के बाद भी महिलाओं की बुनियादी समस्याओं में कमी नहीं आयी, उल्टे प्रशासनिक लालफीताशाही और भ्रष्टाचार ने उसे जीवन की नयी जटिलताओं में फंसा दिया। महिला सशक्तिकरण का उद्देश्य उस समय तक पूरा नहीं हो सकता, जब तक कि उन्हें प्रशिक्षित और जागरुक करने की समुचित व्यवस्था नहीं हो जाती।

सुशिक्षित घरों के भी अनेक मामले ऐसे आते हैं जब उसे हतोत्साहित किया जाता है। उसे अपने परिजनों की नकारात्मक ऊर्जा का शिकार होना पड़ता है और वह प्रायः अपना सहज आत्म–विश्वास और संकल्प शक्ति खो बैठती है। ग्राम्यांचलों में तो आज भी रूढ़िवादिता और झूठी इज्जत की परिकल्पना के चलते अपने ही क्रूरता से हत्या कर देते हैं। कारण होता है चरित्र शंका या प्रकृत आकर्षण। महिलाओं के विरुद्ध अनगिनत अंधविश्वास और पूर्वाग्रह कार्य करते हैं, उन्हें समझना होगा।

वर्तमान दौर में नये ट्रेंड के रूप में 'लीव इन' 'सरोगेसी' भी कई समस्याओं को जन्म दे रही है। आज महिला सशक्त होने का अर्थ हो गया है–''आर्थिक सशक्तिकरण'' महिला सशक्तिकरण के नाम पर जो मानसिक मूल्यहीनता आ गई है उसे भी परखना होगा। तलाक/विवाह–विच्छेद अधिकांश प्रकरणों में पारिवारिक उत्तरदायित्व–बोध नहीं होने के कारण हो रहे हैं। नव युवतियों को किसी भी प्रकार का पारिवारिक दायित्व, जवाबदेही मंजूर नहीं, मर्यादा भी बंधन लगती है। आज के दौर में युवा वर्ग सोशल मीडिया, पाश्चात्य संस्कृति से बहुत अधिक प्रभावित है। जनसंचार के माध्यमों की भूमिका कहीं न कहीं भारतीय सांस्कृतिक परिवेश से कटकर आजादी के नाम पर उच्छृंखलता और अपरिमित अधिकार का पाठ पढ़ा रही है।

इस सम्पूर्ण परिदृश्य पर गंभीरता से सोच–विचार करने पर पायेंगे कि कमी एक पक्ष में नहीं है। सभी को अपना–अपना आत्मावलोकन करना होगा। सही शिक्षा, सुसंस्कार के साथ ही आधुनिकता के नाम पर भौंडे संस्कारों को तिलांजलि देनी होगी। पुरुष वर्ग को अपनी सोच और मानसिकता बदलनी होगी तथा प्रत्येक महिला को मां, बहन, बेटी, पत्नी, सास, ननद, जिठानी, देवरानी आदि भूमिका में अपने शिक्षित सशक्त व्यक्तित्व का विकास एकपक्षीय न करते हुए गौरवपूर्ण महिला शक्ति के सांस्कृतिक विरासत को अपनाकर परिवार, समाज, राष्ट्र एवं सृष्टि के संतुलित सारगर्भित संचालन में अपने दायित्वों का सफल निर्वहन करते हुए आनेवाली पीढ़ियों में भी उच्च नैतिक मूल्यों का संचरण कराना है।

– डॉ. तारा परमार

तमिल के 'एक दलित अफसर की मृत्यु' उपन्यास में जातीय संघर्ष

– डॉ. पी. सरस्वती

'एक दलित अफसर की मृत्यु' नामक यह तमिल उपन्यास श्री पंजांगम नामक उपन्यासकार के द्वारा लिखा गया है। तमिलनाडु में दलित साहित्य के विकास में दलित और गैर दलित लेखकों का योगदान सदा महत्वपूर्ण रहा है। तमिल दलित साहित्य काफी समृद्ध है। यहां के साहित्यकारों में दलित और गैर दलित दोनों ने दलितों के जीवन संघर्ष को साहित्य में दर्ज करने में अहम भूमिका निभाई है। ऐसे ही एक गैर दलित साहित्यकार श्री पंजांगम के द्वारा लिखा गया उपन्यास है "एक दलित अफसर की मृत्यु"। उपन्यासकार ने एक शिक्षित, दलित अफसर के जीवन संघर्ष का समाज के सामने पर्दाफाश किया है। उपन्यास का प्रारंभ दलित अफसर की मृत्यु से शुरू होता है। पूरा उपन्यास पूर्व दीप्ति शैली के आधार पर लिखा गया है । उपन्यासकार ने उपन्यास में यह साबित करने की कोशिश की है कि जातिगत संघर्ष का अनुभव सिर्फ अनपढ़ दलितों को ही नहीं, बल्कि उससे भी ज्यादा संघर्ष शिक्षित और बड़े–बड़े पदासीन अफसरों को भी करना पड़ता है।

शिक्षा के क्षेत्र में जातिगत भेद–भाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। कहीं विद्यार्थी के निम्न जाति का होने के कारण उसको हमेशा दबाने की कोशिश की जाती है, तो कहीं प्राध्यापक निम्न जाति के होने के कारण उनके हर कार्य पर निगरानी रखी जाती है और जाति के आधार पर उनके चरित्र पर टीका–टिप्पणी तो आम बात है। ऐसे ही एक संदर्भ का उल्लेख इस उपन्यास में उपन्यासकार ने चित्रित किया है। बालन कॉलेज में पढ़ाता है। उसकी कक्षा का एक विद्यार्थी जो कि उच्च जाति का है बालन से बदतमीजी करता है। बालन उसके इस व्यवहार को प्रधानाचार्य तक ले जाता है और उसके खिलाफ शिकायत दर्ज कराता है। आत्मसम्मान की भावना से बालन के द्वारा कार्यवाही की मांग का कॉलेज के सभी प्राध्यापक विरोध करते हैं। ऐसे प्राध्यापकगण बालन की बात को समझने की बजाय बालन की जाति को लेकर टीका–टिप्पणी करते हैं। उनका विचार है कि 'इस तरह के लोगों को शिक्षित कराकर, अध्यापक के पद पर नियुक्ति करने पर ऐसे ही होगा। आग में तपने पर भी इनकी जाति की बुद्धि कभी नहीं बदलेगी? अपना–अपना काम धंधा स्वयं करने से कोई समस्या उठेगी ही नहीं। (पृष्ठ 13)

किसी कार्यालय में कार्यरत कोई कर्मचारी दलित है तो वहाँ के बाकी कर्मचारी उसी पर कड़ी नजर रखते हैं। उसके द्वारा किये गये व्यवहार के साथ उसकी जाति की तुलना करके उसे नीचा दिखाने में तुले रहते हैं। साथ ही पेरियार को भी आरोप लगाते हैं। तमिलनाडु में पेरियार नामक सुधारवादी यहाँ के जाति भेद के खिलाफ लडकर दलितों को सामाजिक न्याय दिलाने में अग्रणी थे। पेरियार ने आजीवन हिंदू धर्म और ब्राह्मणवाद का जमकर विरोध किया। जाति प्रथा का घोर विरोध किया। पेरियार ने दलित–हरिजनों और महिलाओं के लिए 'आत्मसम्मान आंदोलन' भी चलाया। सवर्ण लोगों का विचार है कि पेरियार के कारण ही दलित आगे बढ रहे हैं। इस संदर्भ का उल्लेख उपन्यासकार ने उपन्यास में चित्रित किया है कि – "कीचड़ में रहने वाले लोगों को इस प्रकार पंखे के नीचे बैठाएंगे तो ऐसा ही करेंगे। यह सब कहां जीवन में प्रगति करनेवाले हैं? सब का कारण यहां के पेरियारहैं। (पृष्ठ 39)

अशिक्षित लोग स्वयं पर हो रहे अत्याचर को मूक बनकर सह लेते हैं। पर शिक्षित उच्च पदासीन व्यक्ति जाति के नाम से हो रहे जुल्म को न तो सह पाता है, और न ही उसके खिलाफ लड़ पाता है। इस संदर्भ का चित्रण भी उपन्यासकार ने अपने उपन्यास में किया है। बालन कॉलेज में प्राध्यापक है। अपने दोस्त के साथ अपने गांव जाकर वापस लौटते वक्त अपने ही गांव की सड़क के किनारे एक दुकान में चाय पीने के लिए जाता

है। दुकानदार को बालन की जाति के बारे में जानकारी है और वह यह भी भली–भांति जानता है कि इस समय बालन कालेज में पढ़ाता है। इसके उपरांत भी दुकानदार बालन के लिए दुकान में अलग से रखे हुए लोटे में चाय देता है। जिसे देखकर बालन को क्रोध आ जाता है और वह अपने क्रोध को अपने मित्र से इस प्रकार अभिव्यक्त करता है–"इस तरह और कितने दिनों के लिए समाज के नाम पर इन यातनाओं को हम सहते रहेंगे? अलग से लौटे में चाय देता है । उसको हम कुछ नहीं कह सकते?" (पृष्ठ 32)

हमारी सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत उच्च जाति के लोगों को मार्गदर्शन देनेवाले अनेक विद्वान, नेता इत्यादि मिल जाते हैं। पर दलित समाज में अंबेडकर के अलावा कोई ऐसा नहीं है जिसे हम समाज में एक अच्छे मार्गदर्शक के रूप में चुन सकें। जो भी अंबेडकर के विचारों से परिचित हैं वे उनके उपदेशों और आदर्श वचनों से प्रेरित होकर अपनी अज्ञानता को दूर करते हैं और स्वयं में चेतना लाने का प्रयास करते हैं। ऐसे ही एक चरित्र का उल्लेख इस उपन्यास में उपन्यासकार ने किया है। उपन्यास का सामी नामक पात्र सरकारी नौकरी करते हुए अंबेडकर युवा कल्याण मंडल नामक एक संस्था को दलित कल्याण हेतु चलाता है। बच्चों को प्रेरित करने के लिये सामी ने अंबेडकर के अमृत वचनों को इस प्रकार अभिव्यक्त किया है "जब तक बकरियों की तरह जियेंगे तब तक हमारी बलि चढ़ायेंगे। मेरी प्यारी जनता, आप लोग शेर बनिए" (पृष्ठ 18) सामी के मुंह से अंबेडकर के वचनों को सुनकर बालन के शरीर में रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इतना ही नहीं सामी ने वहाँ के शोषित दलितों को जागृत करने हेतु कहा कि हमारी स्थिति ऐसी क्यों हैं? हमारे जीवन को किसने चुराया? मेरे सामने नंगा और पतला जो लड़का खड़ा है, उसको जो खाना और कपडा मिलना था, उसको किसने चुराया? बकरी को छूते हैं, गाय को छूते हैं, कुत्ते को लाड प्यार करते हैं, लेकिन हमें क्यों नहीं छूते हैं? हमें नीच किसने बनाया? ....हमारे दैनिक जीवन को तहस–नहस करने वाले इनकी बर्बरता को कब तक हम सहन करेंगे? इनके खिलाफ लड़ना चाहिए। (पृष्ठ 20)

शिक्षित, योग्य दलित व्यक्ति यदि कहीं किसी उच्च पद पर पदासीन है तो वहां के कर्मचारी उसकी जाति के आधार पर उससे व्यवहार करते हैं। उपन्यास का बालन पहले तमिलनाडु के किसी कॉलेज में प्राध्यापक के रूप में कार्यरत था, बाद में वह अपनी योग्यता के बल पर यूपीएससी परीक्षा उत्तीर्ण कर अफसर बनता है। कुछ लोग उसे अंबेडकर का आदमी नाम से सम्बोधित कर उसकी पीठ पीछे टीका–टिप्पणी करने लगे। डिप्टी कलेक्टर बालन अपनी स्थिति का परिचय अपने दोस्त को इस प्रकार देता है कि "एक अफसर के रूप में चाहे जितनी ही क्षमता से कार्य करो, फिर भी जाति के नाम से नीचा दिखाते हैं। काबिल लोगों की स्थिति ऐसी है तो, बाकी लोगों का क्या कहना है? जरा सोच कर देखो? दूसरी जाति के लोग कितनी भी नीच प्रवृत्ति के क्यों ना हों, कहीं भी उसकी जाति सामने नहीं आती। पर यहां एक दलित के अच्छा या बुरा होने के पहले उसकी जाति पहले आ जाती है। कुत्ते को नहलाकर घर के बीच में रखने पर भी कुत्ता कुत्ता ही है' जैसे शब्दों का अनायास ही प्रयोग करते हैं। सब को सुनकर भी अनसुना जैसे रहना पड़ता है। (पृष्ठ 109)

समाज में कहीं–कहीं शिक्षित दलितों की स्थिति अशिक्षित दलितों से भी अधिक सोचनीय है। शिक्षित होकर अपने ऊपर हो रहे अत्याचार के खिलाफ नहीं लड़ पा रहे हैं साथ ही उसको सहन भी नहीं कर पा रहे हैं। उपन्यासकार ने उपन्यास में इस संदर्भ का चित्रण किया है। बालन के अफसर बनने के बाद उन्हें कार्यालयों में भी कई समस्याओं को झेलना पड़ा। शिक्षित और काबिल व्यक्ति होने पर भी दलित होने के कारण उन्हें पग–पग अपमानित होना पड़ा। इसके कारण बालन मानसिक तनाव से गुजरने लगा। इस संदर्भ में उसने इस प्रकार सोचा है कि"मैं क्यों अफसर बना? मैंने क्यों पढा? अशिक्षित दलित का जीवन बेहतर है। अज्ञानता के कारण उसका जीवन सुखमय है। पर

सब कुछ जानते हुए भी मैं उनके खिलाफ कुछ नहीं कर सकता। उनको नजरअंदाज भी नहीं कर सकता और उनके खिलाफ भी नहीं जा सकता? यह भी कोई जीवन है? शायद इसी को ही नरक कहते होंगे। (पृष्ठ 120)

बालन एक दलित के रूप में जन्म लेकर अंत में एक दलित अफसर के रूप में आत्महत्या कर लेता है। आत्म निर्भरता और आर्थिक निर्भरता से परिपूर्ण होने पर भी बालन इस सामाजिक व्यवस्था के हाथों में कठपुतली बनकर अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है। बुद्धिमता और क्षमता के साथ जब तक जाति का संबंध जोड़ते रहेंगे तब तक बालन जैसे दलित अफसर अपने को हीन और असहाय मानकर मानसिक कुंठा से पीड़ित होकर अपनी जीवन लीला को ऐसे ही समाप्त करते रहेंगे। शारीरिक क्षमता के साथ–साथ दलितों में मानसिक क्षमता का होना भी जरूरी है। क्योंकि मानसिक रूप से कमजोर और तनावग्रस्त होने पर समाज में आगे बढ़ना और लड़ना मुश्किल है। उपन्यासकार ने दलितों के जातीय संघर्ष को उपन्यास में बालन के चरित्र द्वारा व्यक्त कर यह साबित करने की कोशिश की है कि दलितों के संघर्ष अभी जारी हैं। समाजिक विकास के साथ उनके संघर्ष के रूप में परिवर्तन आया है किंतु अभी भी अधिकांश लोगों की मानसिकता में दलितों के प्रति वही कुंठा और रूढिवादिता भरी पडी है जो सदियों पुरानी थी। अधिकांश लोगों में परिवर्तन देखना अभी भी शेष है।

सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
मद्रास विश्वविद्यालय, चेन्नई– 600 005
मोबाइल : 9381297979

संदर्भ ग्रंथ :–

एक दलित अफसर की मृत्यु
उपन्यासकर– पंजांगम
अन्नम प्रकाशन, तंजाऊर, तमिलनाडु
प्रथम संस्करण : 2014

'एक चादर मैली सी' में नारी विमर्श

– डॉ. सोनिया माला

आधुनिक युग, विमर्शों का युग है। इस युग में अनेक विमर्शों ने अपने मजबूत पांव पसार रखे हैं। हमें सबसे पहले विमर्श शब्द के अर्थ को जान लेना चाहिए। विमर्श से अभिप्राय किसी तथ्य अनुसंधान, विवेचन, आलोचना, समीक्षा व परखने की क्रिया से है। किसी बात या विषय में किसी निर्णय या निश्चय पर पहुंचने से पहले हम लोगों के साथ बैठकर उसके सब अंगों या पक्षों का ऊंच–नीच और हानि–लाभ देखते हैं या सब बातें अच्छी तरह सोचते समझते है तब हमारा कार्य विमर्श कहलाता है। विचार तो हम स्वयं या अकेले कर सकते है। परन्तु विमर्श में किसी दूसरे व्यक्ति या व्यक्तियों की अपेक्षा होती है। आपस में मिल–जुलकर और अच्छी तरह सोच समझकर की जाने वाली चर्चा ही मुख्यतः विमर्श है। भाषा के द्वारा किसी एक विषय के इर्द–गिर्द होती बहस द्वारा व्याख्याओं एवं मान्यताओं के निर्माण की प्रक्रिया विमर्श है। आधुनिक विमर्शों पर मुख्य अभियोग यह है कि ये प्रत्याख्यानमूलक है, पलटकर जवाब देते है, विचार या मेटानैरिटिल्स या वैचारिक आग्रहों या दूसरे बने बनाए गोनोलिथ खाँचों से भी अपना पल्ला झाड चुके है। फ्रेम से बाहर निकल आये है,ये श्वेत–अश्वेत, हिन्दू–मुसलमान, गरीब–अमीर, ऊँच–नीच, स्त्री–पुरुष सब द्विपद को एक साथ लेकर चलते है। उत्तर आधुनिक विमर्शों में दो विमर्श प्रमुख है – दलित विमर्श और स्त्री विमर्शास्त्री विमर्श मुख्यतः पश्चिम से आया हुआ आन्दोलन है। पुरुष वर्ग स्त्री की समस्या को समझा नहीं सकता। पुरुष वर्ग मात्र प्रतिनिधित्व ही कर सकता है पर स्त्री वर्ग से जुड़ी किसी भी समस्या के लिए पूर्णतः समाधान प्रदान नहीं कर सकता। स्त्री–विमर्श के सन्दर्भ में स्वानुभूति और सहानुभूति का प्रश्न उठाया गया है। रचना की प्रभावात्मकता एवं मार्मिकता स्वानुभूति से निर्मित होती है या सहा–गति से जो लोग स्वानुभूति को अति महत्वपूर्ण

मानते है उनका यह सोचना है कि स्त्री–विमर्श में स्वानुभूति परक रचनाओं को सम्मिलित किया जाना चाहिए। पीडा की अनुभूति हर मनुष्य को समान रुप से होती है। वहां लिंग का भेद नहीं होता है। समाज चाहे पितृ सत्ता प्रधान रहा हो, चाहे मातृ सत्ता लेकिन साहित्य की दुनिया में नारी की उपस्थिति महत्वपूर्ण रही है। चाहे प्रेम का सन्दर्भ हो, चाहे ईश्वरत्व की परिकल्पना हो । नारी की बराबर हिस्सेदारी रही है।

प्राचीन समय में भारतीय नारी समाज का एक अभिन्न अंग थी। हिन्दू समाज में नारी कि जो स्थिति थी। वह अन्य किसी भी समाज में देखने को नहीं मिलती। स्त्रियों को उस समय सम्पति में भी पूर्ण अधिकार था। उन्हें समाज के सभी फैसलों में महत्वपूर्ण माना जाता था। स्त्री केवल पत्नी के रुप में ही नहीं अपितु हर रूप में पूजनीय थी। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों यथा शिक्षा, धर्म, साहित्य, कला, संस्कृति नृत्य, गायन व वादन में उनका काफी महत्वपूर्ण योगदान था शिक्षा, वेद–वेदान्त ज्ञान के मामले में वह पुरुषों से पीछे नहीं थी। आधुनिक काल नारी जागरण का संदेश दिया। इस युग में नारियां घर की चारदीवारी से बाहर आयी और नये–नये कार्य क्षेत्रों में जाने लगी। नारियां अब शिक्षा के प्रति भी जागरूक हुई जिससे उनकी दिनचर्या में काफी परिवर्तन आ गया और वह समाज की चुनौतियों में दिलचस्पी लेने लगी। नारी बेशक शिक्षित हुई पर फिर भी उसके प्रति अपराधों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। आज देश का प्रत्येक व्यक्ति निर्भया केस से परिचित है। हैवानियत का नंगा नाच जो निर्भया ने झेला वह नारी के सशक्तिकरण को प्रकट नहीं करता पर फिर भी नारी उम्मीदों का दामन थामे हए निरन्तर आगे बढ़ रही है। 20 मार्च 2020 को बेशक दोषियों को फांसी देकर दण्डित कर दिया गया पर नारी के लिए माहौल अभी भी प्रश्नसूचक है ? बेशक आधुनिक युग में नारियों के लिए प्रगति के कई द्वार खुले है पर साथ ही अनेक समस्याओं तथा चुनौतियों का भी सामना करना पड़ रहा है ।

आधुनिक युग में नारी को किस प्रकार की यातनाएं झेलनी पड़ रही है। इसका चित्रण राजेन्द्र बेदी के उपन्यास **"एक चादर मैली सी''** में देखा जा सकता है। रानो का पति तिलोका दिन भर नवाब, इस्माईल, गुरुदारा इत्यादि के साथ इक्का हांकता था और शाम के वक्त वह नसीबों वाले अड्डे पर पुहंचकर इस ताक में खड़ा हो जाता था कि शायद कोई भूली भटकी सवारी उसे मिल जाए और वह उस सवारी को अच्छे खाने, नर्म और गर्म विस्तर के लालच में ले जाकर मेहरबान की धर्मशाला में छोड़ दे और स्वयं मिट्ठे मालते की बोतल प्राप्त कर सके। घर जाकर वह उस बोतल को पीने ही वाला होता है कि रानो उसे कडक कर कहती है –'मैं न पीने दूंगी। कहां है तुम्हारी बोतल?....आज मै देख तो लूं, उसमें क्या है, जो मुझमें नहीं ? 'दांत पीसते झल्लाते हुए तिलोके ने एक दुर्बल सा प्रयास किया।' कुत्तिए कंजरिए।... मैं तुझसे पूरी लगाम खींच के बात कर रहा हूँ और तु है कि छुटते ही हवा के घोडे पर सवार हो गई। "हां ...! रानो बोली, 'घोडे–घोडियों पर तो तू ही सवार हो सकता है, कोई दूसरा नहीं। आज मैं इस बात का फैसला करके रहूंगी। इस घर में यह रहेगी या मै रहूंगी। रानो गुस्से में आकर बोतल ढुंढने लगती है। देखते ही देखते तिलोके की आंख का पानी मर जाता है। वह पीछे से भागती हुई रानो के उडते हुए बालों को पकड़ लेता है और एक झटके में उसका पटरा कर देता है। दीये की लौ एक बार बुझने–बुझने को होती है और फिर सीधी होकर कांपने लगती है। डब्बू तनकर खड़ा हो जाता है और फिर कुछ न समझाते हुए भूंकने लगता है। बड़ी चिल्लाती है – 'बापू ! बच्चे अंधेरा ढूंढने लगे और उसे न पाकर एक तो घर से भाग जाता है। दूसरा एक कोने में लगा, डर के मारे मां की जगह आं आं। कह रहा था। हुजूर सिंह चारपाई पर से लपकता है, याचना के स्वर में गालियां देता हुआ कहता है–"ओए पापिया, ओए बेरहमा, ओर बेहयावा।''

पहले हल्ले में तो रानो उसके बराबर आती है।

वह अपनी बतीसी तिलोके के हाथ में धंसा देती है। तिलोका क्रोध से भरकर उसे दीवार में दे मारता है और उसे भी गालियां देता है जो किसी ने कभी भी किसी जानवर को न दी होगी, होश में आते ही बोली – 'जानती थी, मैं जानती थी, एक दिन यह चांद चढने वाला है....हाय! यह टपरीवागियों की औलाद....जाने कहां से हमारे घर आ गई ..? बुढिया बके जा रही थी। अपनी कमाई की पीता है। इसके बाप कमीने से तो मांगने नहीं जाता। खुद तो खप गया। इरो छोड गया हमारे लिए। ..मां की शह पाकर तिलोका और भी तेज हो जाता है और वह रानो के कपडे फाड़ देता है और उसे बिल्कुल ऐसे कर देता है मानो अभी पैदा हुई हो। वह जोर–जोर से चिल्ला रहा होता है–निकल जा, निकल जा मेरे घर से। रानो बेदम सी होकर कहे जा रही थी–मैं नहीं रहूंगी ... पर आप ही नही रहूंगी।

उपन्यास में रानो चाहती है कि उसका पति शराब छोड़ दे पर जब तिलोके की मां अपने बेटे को कहने की अपेक्षा अपनी बहू का ही कसूर निकालती है तो तिलोका रानो की गरिमा को तार–तार करते हुए पुरूष वर्ग का ऐसा कुत्सित चित्र उसकी आंखों के समक्ष रखता है जिसे वह चाह कर भी भूल नहीं सकती।

उपन्यास के माध्यम से बेदी जी ने यह भी स्पष्ट किया है। नारी उस समय भी बन्धनों में जकड़ी हुई थी और आज भी वह बन्धनों को अपने ऊपर लादे हुए है। पति की मारपीट सहन करती है और घर छोड़ने का फैसला करती है। पर अगली सुबह होते ही वह मोम बन जाती है और पति की मीठी बातों में आ जाती है। सगो अपने आप को बेबस समझती है। क्योंकि वह अपने पति का घर छोडकर आखिर जाती भी तो कहाँ? रानो को अपने बच्चों से मोह भी अत्याधिक था जिस कारण वह पति की मार सहते हुए भी उस घर को त्यागने को तैयार नहीं होती। रानो की सास तिलोके का साथ देती है और रानो तथा उसके परिवार वालों को भला बुरा कहती है पर रानो यह सोचकर कि जाएंगी भी तो कहां जाएंगी? चुप हो जाती है। वह निरीह जीव की तरह पति की मार सहती रहती है। बेदी जी ने जिस नारी को अपने उपन्यास में चित्रित किया है। वह आधुनिक युग में भी विद्यमान है। आज भी गांवों की स्त्रियां पुरुषों के जुल्मों को सहन करती है। वह अपनी इच्छाओं का त्याग करके अपने पति और परिवार के लिए बलिदान देती है। रानो को पता है कि भारतीय समाज की स्त्री को आजादी नहीं है क्योंकि उसके लिए तो कहा जाता है वह पति के घर से निकलेगी तो केवल कफन में ही । बेशक आधुनिक युग में ऐसा रुप प्रत्यक्ष रुप में देखने को नहीं मिलता पर मां–बाप विवाहित स्त्री के साथ नाममात्र की हमदर्दी ही करते है वो भी समाज के डर से। परोक्ष रूप से भारतीय लोगों की मानसिकता यही है जिसका विवाह जिससे हो गया वो उसकी आधिकारिक संपत्ति है। प्रेम विवाह करनेवाली स्त्रियों की स्थिति तो इससे भी भयावह है। उन्हें न समाज से सम्मान मिलता है न परिवार से और न ही वर पक्ष से। आधुनिक युग में चाहे प्रेम विवाहों ने अपनी स्थिति मजबूत कर ली है पर स्त्री के लिए यातनाएं प्राचीन समय और आधुनिक युग में समान ही है।

इस उपन्यास में नारी के पुनर्विवाह की समस्या को भी चित्रित किया गया है। रानो के पति तिलोके की मृत्यु हो जाती है। जिन्दा चाहती है रानो अगर उसका घर छोड़कर चली जाए। वह किसी न किसी तरह से उससे पीछा छुड़ाना चाहता है । वह रानो से कहती है –गुरू के लिए, भगवान के लिए, देवी मां के लिए–तू अब जा, मर खप ले! जो अन्धा–काना मिलता है. कर ले...यहां से मर ले ..... पर रानो कहती है–'मैं क्यों जाऊं यह मेरा घर है. क्या नहीं किया मैंने इसके लिए? बेटे नहीं जने कि बेटी नहीं जनी....।' लेखक स्पष्ट करता है कि जिन्दा रानो को किसी भी तरह से घर से निकालना चाहती है। उसको अब यह चिंता सताती है कि अगर रानो यहां रहेगी तो उसका पालन–पोषण करना पडेगा घर में वैसे भी। खाने वालों की कमी नहीं है। अगर यह भी यहां रहेगी तो गुजारा करना मुश्किल हो जाएगा। अभी इसकी उम्र है किसी से भी शादी कर सकती है। उपन्यास के माध्यम से लेखक स्पष्ट करता है कि नारी

के आर्थिक रूप से सम्पन्न न होने पर उसे हर दुखदायी स्थिति को सहन करना पड़ता है। आधुनिक नारी भी चाहे सुशिक्षित हो चुकी है, पर वह अगर आर्थिक रूप से सबल नहीं है तो उसका अस्तित्व ही नगण्य है। रानो अपने बारे में सोचते हुए कहती है कि यह उसका अधिकार है। रानो की दुर्दशा देखकर बन्नो उसे कहती है कि जिन्दा तुम्हारी सास तुझे जीने नहीं देगी। रानो अगर तुमने इसी घर में रहना है तो मंगल से शादी कर ले यह सुनकर रानो कांपने लगती है। वह कहती है–मंगल बच्चा है। मैंने उसे बच्चों की तरह पाला है.... उम्र में मुझसे कुछ नहीं तो दस ग्यारह साल छोटा है। नहीं नहीं मैं तो यह सोच भी नहीं सकती। धीरे–धीरे यह बात पंचायत तक पहुंच जाती है। पंचायत ने और हुजूर सिंह, जिन्दा ने मंगल और रानो की शादी पक्की कर दी। रानो मन ही मन खुश थी कि उसे अब अपने पति का घर छोड़ना नहीं पडेगा। वही मंगल किसी भी हाल में इस शादी को करना नहीं चाहता था । पंचों की तय की हुई तारीख को मंगल का रानो के साथ जबरदस्ती विवाह कर दिया जाता है। उपन्यास के माध्यम से बेदी जी ने स्पष्ट किया है कि समाज की यह मानसिकता है कि स्त्री के ऊपर हमेशा किसी न किसी पुरुष की चादर होनी चाहिए। जिन्दा पहले रानो को अपने घर से निकालना चाहती थी। पर जैसे ही पंचों ने फैसला सुनाया कि मंगल को रानो से शादी कर लेनी चाहिए। वह सब कुछ भूलकर रानो भी दोबारा शादी के लिए तैयार हो जाती है। उपन्यास के पात्रों का मानना है कि स्त्री का पति अगर मृत्यु को प्राप्त हो जाए तो उसे पुनर्विवाह कर लेना चाहिए। उपन्यास के सभी पात्र रानो और मंगल की शादी करवाना चाहते थे। पर किसी ने भी मंगल की इच्छा जानने की कोशिश न की। रानो का मंगल के साथ विवाह के लिए राजी होना इस बात का द्योतक है कि वह अगर गंगल से शादी न करती तो उसे अपना घर, बच्चे छोड़ने पड़ते और अपनी आजीविका चलाने के लिए किसी पर आश्रित होना पडता। क्योंकि समाज उसे अकेले जीवनयापन करने की इजाजत नहीं देता।

इस उपन्यास में गरीब परिवारों द्वारा बेटी बचाने की समस्या को भी चित्रित किया गया है। रानो की सास जिन्दा बड़ी बेटी को शादी के लिए दिखाने के लिए कुछ लोगों को घर बुलाती है। उस समय रानो घर में नहीं होती, पर जैसे ही वह घर वापिस आती है तो बडी उसे सब कछ बता देती है। रानो जिन्दा के पास जाती है और कहती है.....'किसकी हिम्मत पड़ी यह दहलीज फादने की...मेरी बेटी का सौदा करने की ?.... 'नहीं धीये, राणिय....वे तो ऐसे ही बात कर रहें थे। हर किसी का मुंह थोड़े ही पकड़ा जा सकता है ? 'हां पकड़ा जा सकता है। झुलसा जा सकता है। उन हरामजादों की जबान काट देनी थी। मुंह में लट–लट करता हुआ चों ठंस देना था....मेरी बेटी जिसकी एक–एक बांह, एक–एक उंगली, एक–एक नख लाख लाख की। उसकी एक–एक तकनी में सौ सौ मोखा लोगों को एक–एक नजर में उमर कैद। 'हाय ! अब मैं बेटी को बिकते देखूगी। मैं तो सिर्फ कुछ ले कर नहीं आई थी तो यह दुर्दशा हुई। ... यह तो बिक जाएगी और वह बात बात पर उसकी हड्डिया तोड़ेगें। नोंच–नोंच कर खाएंगे कहेंगे तुझे ऐसे ही तो नहीं खरीद कर लाएं दाम दिए है....।' वह आगे सोचती है कि ..फिर ...पांच साढे पांच सौ मिलेंगे तो यह फाफा मुझे थोडे देगी ही। आखिर अगर बेचना ही है तो एक ही बार साढ़े पांच सौ में क्यों ? क्यों न मैं उसे शहर ले कर निकल जाऊ और थोडा–थोडा करके बेचूं ? लाहौर में सैकड़ों हजारों बाबू लोग फिरते है। जो कुछ देर के दिल बहलाने के लिए पन्द्रह–पन्द्रह बीस–बीस रुपए दे जाते है। खाने को चंगी चोखी मिलेगी पहनने को रेशम–खीन खाफ...थोडे ही दिनों में रुपयों और कपडों से सन्दूक भर जाएंगे.....'उपन्यास के माध्यम से बेदी जी ने चित्रित किया है कि जिन्दा अपनी पोती को थोडे से पैसों के लिए अनजान हाथों में सौंपने को तैयार हो जाती है। सगो पहले तो अपनी सास की इस करतूत

से सहम जाती है और बाद में अच्छे खाने और अच्छे पहनावें के लिए अपनी बेटी को लाहौर में ले जाकर बेचने की कल्पना करने लगती है। उपन्यासकार समाज के समक्ष प्रश्न उठाता है कि क्या आर्थिक समस्याएं स्त्री के शोषण का असली कारण है ? क्यों मां आर्थिक सम्पन्नता के लिए इतनी आगे निकल जाती है कि वह बेटी को बेचने तक के लिए तैयार हो जाती है । पर जैसे ही वह वर्तमान में आती है और तिलोके के बारे में सोचती है। वह रुह तक कांप जाती है और अपने मुंह पर झन्नाटेदार थप्पड मारती है। इस उपन्यास के माध्यम से बेदी जी ने सलामते के माध्यम से पुरुषों द्वारा स्त्रियों का इज्जत आबरु का ख्याल न रखने पर भी प्रश्न उठाया है। जब मंगल को पता चलता है कि पंचायत और परिवार वाले उसका विवाह रानो से करवाने वाले है तो वह सलामते के पास जाता है। वह धीमी, किन्तु मजबूत आवाज में पुकारता है – 'सलामतिये!'

इधर आ ! वह बोला और सलामते जवाब दिए बिना मंगल के पास आ गई। रुक गई.....

निकाल दे दुपट्टा मंगल बोला।

सलामते ने दुपट्टा अलग फेंक दिया।

'उतार दे कमीज'

सलामते ने कमीज उतार दी.....। एक युवती के लिए सबसे मुश्किल बात लेकिन उस क्षण की सूली पर लटकी हुई सलामते अपना इरादा ही खो बैठी। मंगल ने अंधेरे में कहीं दूर से अपना आप–छुड़ाकर आती हुई दीये की लौ में सलामते की तरफ देखा और उसी भारी स्वर में बोला– "हो गई सैर..... अब चली जा.....!'' मंगल द्वारा सलामते का प्रयोग यह स्पष्ट करता है कि स्त्री अगर किसी पुरुष पर विश्वास करके उसे अपना समर्पण करती है तो उसे यह समझ नहीं होती कि पुरुष उसे किस रुप में इस्तेमाल कर रहा है। अगर मंगल सलामते की गरिमा का थोड़ा सा भी ख्याल रखता तो वह उसे इस्तेमाल न करता। सलामते भी अगर अपनी इज्जत की फिकर करती तो वह भी मंगल के एक इशारे पर बावली न हो जाती।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि इस उपन्यास में नारी के विविध पहलूओं पर प्रकाश डाला गया है। सम्पूर्ण उपन्यास रानो नामक पात्रा पर चलता है पर उसकी समस्याएं कैसे आज के समाज में भी विद्यमान है। यह विचारणीय है। निष्कर्षतः स्त्री विमर्श आज के समय की जरुरत है। आधुनिकता के बावजूद भी स्त्री की सामाजिक स्थिति या उत्थान में कोई बड़ा क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं आया है, आज भी वे समझौतों और दोहरे कार्यभार के बीच पिस रही है। पुरुष सत्ता की नींव हमारे समाज में बहुत गहरे तक धंसी हुई है । इसे तोड़ना, बदलना या संवारना एक लंबी लड़ाई है।

सहायक प्रवक्ता
खालसा कॉलेज फॉर वूमेन
लुधियाना (पंजाब)
मोबा. 9815193355

संदर्भः–

1. उमाशंकर चौधरी,दलित विमर्श–कुछ मुद्दे कुछ सवाल. आधार प्रकाशन,पंचकूला,2011,9.50
2. अनामिका, स्त्री विमर्श का लोकपक्ष, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली , 2012.4.21
3. सरोजकुमार गुप्ता,भारतीय नारी आज और कल, प्रकाशन संस्थान,नयी दिल्ली,2012,4.31
4. राजेन्द्र सिंह बेदी,एक चादर मैली सी, हिन्दी पॉकेट बुक्स, दिल्ली, 1985, पृ.17
5. वही, पृ. 18
6. वही, पृ. 34
7. वही, पृ. 40
8. वही, पृ. 40/41
9. वही, पृ. 48

डॉ. भीमराव अम्बेडकर और महात्मा गाँधी के वर्ण व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन

– डॉ. सतीश कुमार वर्मा

बाबसाहेब डॉ. अंबेडकर का योगदान केवल संविधान निर्माण तक ही नहीं सीमित था बल्कि सामाजिक व राजनैतिक स्तर पर भी उन्होंने अपना अमूल्य योगदान दिया। समाज में निचले पायदान पर खड़े व्यक्ति को सामाजिक स्तर पर बराबरी का दर्जा दिलाया तो वहीं राजनैतिक स्तर पर दलितों, शोषितों व महिलाओं को बराबरी का दर्जा प्रदान करने हेतु विधि का निर्माण कर उसे संहिताबद्ध किया। कुछ विद्वानों का ऐसा मानना था कि महात्मा गांधी व अंबेडकर की विचारधारा सर्वथा एक–दूसरे से भिन्न थी, परंतु यह पूर्णतः सत्य नहीं है। भीमराव अंबेडकर, महात्मा गांधी के प्रशंसक ही नहीं बल्कि अनुगामी भी थे। निश्चित ही दोनों के बीच कुछ विषयों पर मतभेद थे परंतु उनका उद्देश्य मानव मात्र का कल्याण करना ही था। गांधी और अंबेडकर दोनों तात्कालिक सामाजिक स्थितियों व परिवेश से असंतुष्ट थे। दोनों समाज का नव निर्माण करना चाहते थे, परंतु इस संदर्भ में समस्या के कारण, स्वरुप व निदान के प्रति दोनों का दृष्टिकोण एवं कार्य–पद्धति अलग–अलग थी। गांधी जी वर्ण–व्यवस्था के प्रबल समर्थक थे। उनका मानना था कि वर्ण–व्यवस्था समाज के लिये उपयोगी है, इससे श्रम–विभाजन एवं विशेषीकरण को बढ़ावा मिलता है। वहीं अंबेडकर वर्ण–व्यवस्था के कट्टर आलोचक थे। अंबेडकर के अनुसार, वर्ण–व्यवस्था अवैज्ञानिक, अमानवीय, अलोकतांत्रिक, अनैतिक, अन्यायपूर्ण एवं शोषणकारी सामाजिक योजना है।[1]

गांधी जी का मानना था कि छुआछूत का वर्ण–व्यवस्था से सीधा संबंध नहीं है। छुआछूत वर्ण–व्यवस्था की अनिवार्य विकृति न होकर वाह्य विकृति है, अतः छुआछूत समाप्त करने हेतु वर्ण–व्यवस्था में रचनात्मक सुधार की आवश्यकता है।[2] वहीं अंबेडकर के अनुसार, अश्पृश्यता या छुआछूत वर्ण–व्यवस्था का अनिवार्य परिणाम है। अतः बिना वर्ण–व्यवस्था का उन्मूलन किये छुआछूत को दूर नहीं किया जा सकता है। गांधी जी छुआछूत को दूर करने के लिये आदर्शवादी व दीर्घकालिक उपायों की बात करते थे जबकि अंबेडकर छुआछूत को दूर करने के लिये व्यावहारिक, त्वरित एवं ठोस उपायों पर बल देते थे। गांधी कहते हैं 'मुझे विश्वास है हिन्दू समाज जो आज तक खड़ा रहने में समर्थ हुआ है तो इसलिए क्योंकि वो वर्णव्यवस्था पर आधारित है।'[3]

गांधीजी सवर्ण हिंदुओं के दृष्टिकोण में परिवर्तन कर अछूतों के प्रति भेदभाव को दूर करने के प्रयासों के हिमायती थे वहीं अंबेडकर यह मानते थे कि हिंदू धर्म के अंतर्गत अछूतों का उद्धार नहीं हो सकता अतः धर्मान्तरण द्वारा ही दलितों का उद्धार संभव है। गांधी जी के अनुसार हिंदू धर्मशास्त्र अश्पृश्यता का समर्थन नहीं करते जबकि अंबेडकर का मानना था कि हिंदू धर्मशास्त्र में ही अश्पृश्यता के बीज विद्यमान हैं। अस्पृश्यता की उत्पत्ति और अस्पृश्यता के विकास के अध्ययन के लिए अम्बेडकर ने अस्पृश्यता के मूल का अध्ययन किया। उन्होंने दो नये सिद्धान्त प्रतिपादित किये जो अस्पृश्यता के मूल पर निम्नलिखित शब्दों में प्रकाश डालते हैं।[4]

1. बौद्धों का अपमान छूआ–छूत का मूलाधार।
2. गौ मांस भक्षण छूआ–छूत का मूलाधार।

उन्होंने सफलता पूर्वक अशुद्धता और अस्पृश्यता के बीच अन्तर स्पष्ट किया और प्रमाणित किया कि अस्पृश्यता हिन्दुओं की एक सामाजिक बुराई है, जिसका कोई विवेकपूर्ण आधार नहीं है। अम्बेडकर के अनुसार भारत में असमानता का मूल अस्पृश्यता में है, प्रणाली का मूल वर्ण और आश्रम पर आधारित धर्म में है, वर्णाश्रम का मूल ब्राह्मणवादी धर्म में है,और ब्राह्मणवादी धर्म का मूल अधिनायकवाद या शक्ति में है। अम्बेडकर का मत है कि असमानता ब्राह्मणवाद का शास्त्रीय सिद्धान्त है और निम्न वर्ग के जो लोग समानता की इच्छा करें उनको निर्दयतापूर्वक कुचल देना उनका ध्येय हैं।[5] अम्बेडकर केवल ब्राह्मण वर्ग के विरुद्ध ही नहीं थे बल्कि बनिया वर्ग के विरुद्ध भी थे। उनके अनुसार बनिया इतिहास का सबसे निकृष्ट परजीवी वर्ग है।[6] अम्बेडकर ने वर्ण और जाति पर आधारित सामाजिक व्यवस्था की आलोचना की। उनके अनुसार चतुर्वर्ण का सिद्धान्त प्लेटो के सामाजिक सिद्धान्त से मिलता–जुलता है। अम्बेडकर ने गाँधीवाद का विरोध किया और स्थापित किया कि समाज में आधुनिक सभ्यता आवश्यक है। सामाजिक और आर्थिक संस्थाओं का परिष्कार आवश्यक है। उन्होंने समाज की वर्गीय संरचना का विरोध किया। उनके अनुसार वर्गीय संरचना लोगों को गुलाम बनाती है और सम्पूर्ण मनोवैज्ञानिक जटिलताओं को जन्म देती है जो गुलाम मानसिकता से उपजी है। लेकिन जो सुविधा प्राप्त वर्ग को प्रभावित करती है। सामाजिक संरचना में पृथक्करण और बहिष्कार, सुविधा प्राप्त वर्गों में एक अपराधी समूह व असामाजिक भावना का निर्माण करते हैं। व्यवहारिक रुप से वर्गीय संरचना एक तरफ है जिसके साथ क्रूर शासन, अहंकार, घमंड, अभिमान, लालच स्वार्थ है और दूसरी तरफ अनिश्चितता विश्वास, सम्मान और स्वाभिमान है। इस प्रकार उन्होंने पूर्णतः सिद्ध किया कि गाँधीवाद समाज की वर्गीय संरचना का समर्थन करता है। अम्बेडकर का कहना था कि "ट्रस्टीशिप का आधार हास्यापद है। उनके अनुसार यह वंचित वर्गों को धोखा देकर यह बताने की कोशिश है कि सम्पत्तिवान वर्गों के लिए एक नैतिक शस्त्र के रूप में है। वे लोग जो कि अपने अतिलोभी अर्थलिप्सा और अदम्य अहंकार से लाखों कठिन श्रम करने वाले लोगों के संसार को आँसुओं की घाटी बना रखें हैं और हमेशा बनाये रखेगें–यह उनको इस सीमा तक पुनर्बल प्रदान करेगा कि वे अपनी जबरदस्त शक्ति के दुरुपयोग करने के लालच करेंगे जोकि वर्ग संरचना ने उनको दास वर्गों के ऊपर दिया है।[7] उन्होंने गाँधीवाद पर आगे टिप्पणी की कि "अगर फिर कोई वाद जिसने धर्म को अफीम बनाकर लोगों को लुभाने के लिए झूठे विश्वासों और झूठे सुरक्षा में रखने के लिए प्रयोग किया है तो गाँधीवाद है।

पूर्व सहायक प्राध्यापक
राजनीति विज्ञान, विभाग सरिया कॉलेज
सरिया, गिरिडीह
मोबा. 7903863631

संदर्भः–

1. गोपाल कृष्णा, 'बाबासाहेब आंबेडकर व्यक्तित्व एवं विचार' सुरुचि प्रकाशन, दिल्ली 1994 पृष्ठ 57
2. राकेश कुमार झा, 'गांधीय चिंतन में सर्वोदय', पॉयिंटर पब्लिशर, जयपुर,1995
3. राजेन्द्र मोहन भटनागर, 'डॉ. अंबेडकर : चिंतन और विचार', चिन्मय प्रकाशन, नई दिल्ली 1994 पृष्ठ 316, 317
4. रुचि त्यागी, 'आधुनिक भारत का राजनीतिक चिंतन : एक विमर्श, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय. 2015
5. एम.आर. विद्रोही ष्दलित दस्तावेज 1989
6. बीएल मेहरदा, डॉ. भीमराव अंबेडकर : जीवन और दर्शन, रावत पब्लिकेशन, जयपुर,1992
7. ओपी गाबा, समकालीन राजनीति सिद्धांत, मयुर प्रकाशन ,नोएडा, 1985

दलित कविताओं में चित्रित प्रतिरोध का स्वर

– डॉ. रीना कुमारी

मैं नहीं जानता कविता क्या कर सकती है ?
कविता कर सकती है विद्रोह
ला सकती है समाज में समानता
अन्याय, भेदभाव का अंत कर।[1]

किसी भी समाज में जब असमानता बढ़ती है तो प्रतिरोध का जन्म होता है। प्रतिरोध एक महत्वपूर्ण हथियार है, जो न्याय की लड़ाई लड़ने के लिए सार्थक है।

सदियों से सवर्ण द्वारा पीड़ित–प्रताड़ित अछूतों के मन में अपने शोषकों के प्रति जो प्रतिरोध का भाव उत्पन्न होता है वही प्रतिरोध दलितों का प्रतिरोध है। यह दलित का मूल स्वर है। इसमें पुरानी परंपरा के नकार के साथ–साथ नयी परंपरा की स्थापना की ललक दिखाई पड़ती है। इस प्रतिरोध की अभिव्यक्ति दलित कवियों ने सशक्त ढंग से की है।

हजारों वर्ष का अँधेरा
छिपा बैठा है मेरी साँसों में
काँपता है दीये की लौ–सा
और तब्दील हो जाता है कविता में।[2]

आर्थिक विपन्नता से पग–पग पर घायल होनेवाले दलित कवि का संवेदनशील हृदय समूचे वर्ग को देखकर उद्वेलित हो उठता है । वह जन जीवन से जुड़े तमाम प्रश्नों की रोशनी में अपने सुन्दर सपनों को यथार्थ में साकार होते नहीं देख पाता तब वह प्रश्न का समाधान तलाश करके अपने विचारों को कविता की शक्ल देकर पूरा करने का प्रयास करता है ।

जिस प्रकार पानी, हवा, खाना सभी प्राणियों के लिए आवश्यक हैं, उसी प्रकार इंसान के लिए भी। दलित वर्ग भी इंसान है। उनका भी इस भूमि पर, प्राकृतिक संपदा पर समान हक है। उन्हें कुत्ते–बिल्ली न समझकर इंसान समझें। वाल्मीकि लिखते हैं :–

चूल्हा मिट्टी का, मिट्टी तालाब की
तालाब ठाकुर का।
भूख रोटी की, रोटी बाजरें की।
बाजरा खेत का, खेत ठाकुर का
बैल ठाकुर का, हल ठाकुर का,
हल की मूठ पर रखी हथेली अपनी।
फसल ठाकुर की, कुआं ठाकुर का
पानी ठाकुर का, खेत–खलिहान ठाकुर के।
गली–मुहल्लें ठाकुर के
फिर अपना क्या ? गाँव ? शहर ? देश ?[3]

मैनेजर पाण्डे के शब्दों में–'ठाकुर का कुआं' कुआं नहीं बल्कि सारे हिंदु समाज है। जिसमें अछूतों को डूब मरने की तो सुविधा है, पीने के लिए पानी लेने की नहीं।'' ओम प्रकाश वाल्मीकि अपनी कुंठा और कुढ़न बड़े सरल शब्दों में व्यक्त करते हुए कहते हैं :–

कभी नहीं माँगी बालिश्त भर जगह
नहीं माँगा आश्रा राज भी
माँगा है सिर्फ न्याय.....[4]

कवि लक्ष्मी नारायण सुधाकर की राय में दलित जन कठोर परिश्रम करते हैं फिर भी उनको भरपेट दो जून की रोटी, रहने को मकान और ढकने को पर्याप्त वस्त्र नहीं मिलते। उनके छूने से हिन्दुओं के मंदिरों में स्थापित पत्थरों के देवता भी अपवित्र हो जाते हैं। भीमसागर की पंक्तियाँ हैं :–

मेहनतकश होने पर भी, जो पेट नहीं भर पाते हैं,
जिनके छूने भर से पत्थर के देव भ्रष्ट हो जाते हैं।
इन दलितों की अब और अधिक दुर्दशा नहीं देखी जाती,
यह जीवन भी क्या जीवन है यह देख–देख फटती छाती।[5]

बदलते समय में जातियों की जटिलताएँ बढ़ती

गयीं । जातियों में से अनेक उपजातियों का जन्म हुआ । उच्च वर्ण समाज में मान–मर्यादा, रहन–सहन में दलितों के श्रमजन्य सुख–सुविधाओं को भोगता रहा। जाति–पांत के अन्याय को केवल नीची जाति ही भोगती रही। वर्ण एवं जाति के प्रति प्रतिरोध डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर की कविता 'गोरख धंधा' में देखने को मिलता है।

इंसानियत की नहीं कोई कीमत
और न कोई पदवी है सचरित्र की
जात–पांत के साँचे में ढलकर
यहाँ परख होती है मानव की।
यहाँ आदर–निरादर भी बढ़ता है
जात–पांत की तराजू से।[6]

हमारा देश अमीरी–गरीबी, जात–पांत की वरिष्ठता जैसी चोटों से कराह रहा है । जाति की कृत्रिम वरिष्ठता के उन्माद में आकर व्यक्ति मानवता के उच्च सिद्धांतों को भूल जाते हैं और अछूत जातियों के प्रति सहानुभूति की भावना भी नहीं रखते । भूख की यातना से पीड़ित होकर दलित आत्महत्या कर लेते हैं। कभी–कभी भूख से स्वतः व्यक्ति के प्राण भी निकल जाते हैं । अदम गोंडवी की पंक्तियाँ :–

आइए महसूस करिए जिंदगी के ताप को
मैं चमारों की गली तक ले चलूँगा आपको
जिस गली में भुखमरी की यातना से ऊब कर
मर गई फुलिया बिचारी कल कुएं में कूद कर।[7]

भारतीय समाज का यह कटु यथार्थ है कि यहाँ लड़के की अपेक्षा लड़कियों पर नैतिक, शारीरिक व मानसिक तौर पर वंश, जाति, परंपरा, कुल आदि की पाबंदियाँ अधिक लगाई जाती है। दलित नारी स्वतन्त्रता युग के अनुकूल समतावादी मानव मूल्यों से वंचित है। आजकल नगरों, गाँवों, महानगरों में हत्या, बलात्कार आदि नारी अत्याचारों की घटनाएँ दलित नारियों पर अधिक घटित होती हैं। कर्मशील भारती ने 'उत्पीडन' नामक कविता में यों लिखा है :–

भारत आज भी जंगली युग में जी रहा है
स्त्री और दलित की
अस्मिता पर हमला हो रहा है।
कर्मशील मानव नित नए अपमान के
आंसू पी रहा है।[8]

डॉ. बी.आर. अम्बेडकर जैसे नेता 'हिंदु कोड बिल' के आधार पर हिंदु नारी पर सदियों से चले आ रहे दलितों और स्त्रियों के विरुद्ध पुरुष के एकाधिकार को समाप्त करना चाहते थे। आज गैर दलित नारी पढ़–लिख कर उच्च पदों पर सुशोभित है, उसका अस्तित्व भी है। पर दलित नारी सदियों से दबी, पिछड़ी हुई है आज भी। समाज की ऐसी नारी का चित्रण वाल्मीकि ने अपनी कविता 'झाड़ूवाली' में किया है :–

सुबह पाँच बजे
हाथ में थाम झाड़ू
घर से निकल पड़ती है।
'रामेसरी'
लोहे की हाथ–गाड़ी थकेलते हुए
खडंग–खडंग की कर्कश आवाज टकराती है
शहर की उनींदी दीवारों से।
रामेसरी के हाथ में थमी बांस की मोटी झाड़ू
सड़क के ऊबड़–खाबड़ सीने पर
रच–रच की ध्वनि से तैरती है
उडाती है धूल का गुबार
धूल जो सैंकड़ों,
वर्षों से जम रही है पर्त–दर–पर्त
फेफड़ों में रामेसरी के,
रंग रही है श्वास नली को
चिमनी सा।[9]

यहाँ 'रामेसरी' जो अपना पूरा जीवन सफाई सेवा में गवां देती है और स्वयं अपना अस्तित्व नहीं बन पाती।

अछूतों की स्थिति किसी भी हालत में परिवर्तित नहीं हुई । वे हमेशा श्रम करते रहे फिर भी भूखे–प्यासे बने रहे, हाथों में बल होने पर भी वे दुत्कार सहते रहे, आजादी के लिए लड़ते रहे।

बच्चा जाग पड़ता है, भूखा है, टटोलता है
नन्हीं हथेलियों से स्तन, जो दूध पिला सकते हैं
पिलपिले स्तनों को सहलाती हैं बच्चे की भूखी
नन्हीं हथेलियाँ, स्तनों से श्वेत दूध
निचुडने के बजाय, लाल रक्त देखकर
सोचती है बच्चे की माँ
यह बिन बाप का बेटा कल जब पूछेगा
माँ
तुम्हारा दूध सफेद क्यों नहीं है ?
क्या जवाब दूंगी मैं, क्या कहूंगी ?
देश के इस कर्णधार को,
यह किस क्रान्ति का प्रतीक है ?[10]

दलित जो हमेशा हाशिए पर रहने के लिए अभिशप्त है उनमें विद्रोह की चेतना को जागृत करना कवि अपना कर्म समझते हैं। महेंद्र बैनीवाल का अटल विश्वास है कि जनता शोषण के विरुद्ध आवाज उठायेगी और टूट कर बिखर जाएंगे। पर एक दिन आखों में आँसू की धारा रक्त बनकर आग की ज्वाला बन जाएगी। वे कहते हैं :–

टूटे हुए लोग, क्या करें?
जो जुड़ने की कोशिश में
लगातार टूट रहे हैं
जूझनेवाले भी कहाँ जाएँ ?
जो–दिन–रात जूझते हुए
थक रहे है।
लेकिन व्यवस्था को ढोते–ढोते
जब बह जाएगा,
तन का सारा स्वेद,
और सूख जाएगा,
आँखों का पानी
उस दिन, नेत्रों में रक्त उतारकर
कर देगा आह्वान क्रान्ति का।[11]

दलित कवियों ने जाति, ऊँच–नीच, अस्पृश्यता, उत्पीड़न आदि सामाजिक कुरूपताओं को मिटाकर समाज में समानता, स्वतंत्रता आदि जनवादी मूल्यों की स्थापना करना चाहते हैं, विश्व बंधुत्व की भावना स्थापित करने की कोशिश भी करते हैं । 'वह दिन कब आएगा' कविता के द्वारा वाल्मीकि जी यों प्रस्तुत करता है –

वह दिन कब आएगा
बामनी नहीं जनेगी बामन
चमारी नहीं जनेगी चमार
भंगिन भी नहीं जनेगी
भंगी तब नहीं चुभेंगे
जातीयहीनता के दंश।[12]

इन कविताओं के विश्लेषण से यह पता चलता है कि प्रतिरोध उन के लिए एक माध्यम मात्र है, जिसके जरिये वे अपनी खोई हुई अस्मिता को ढूँढ निकालना चाहते है।

दलित समाज की मुक्ति ही इन कविताओं की मंजिल है । अन्य काव्य धाराओं की अपेक्षा दलित कविता का सीधा संबन्ध मानव जीवन की जमीन से है।

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग
महाराजा कॉलेज, एरणाकुलम–682011 केरल
मोबा. : 9746157666

संदर्भः–

1 कर्मशील भारती, दर्पण मासिक, अगस्त 1994
2 ओमप्रकाश वाल्मीकि, अब और नहीं, पृ.14
3 ओमप्रकाश वाल्मीकि, ठाकुर का कुआं, सदियों का संताप, पृ. 31
4 ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स बहुत हो चुका
5 लक्ष्मी नारायण सुधाकर, भीमसागर, पृ.20
6 डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर, सिंधु घाटी बोल उठी, पृ.38
7 अदम गांडवी, क्रान्ति धर्मी, सं. स्वामी अग्निवेश, जून 1989
8 कर्मशील भारती, दलित मंजरी, पृ.105
9 ओमप्रकाश वाल्मीकि, सदियों का संताप, पृ.17
10 चन्द्रकुमार बरठे, दर्द के दस्तावेज, पृ.52
11 महेंद्र बैनीवाल, हम दलित (मासिक) 25 नवंबर 1993
12 ओमप्रकाश वाल्मीकि, वह दिन अब आएगा।

निराला के साहित्य में भक्ति एवं दर्शन

– डॉ. दिनेश्वर कुमार महतो

सरस्वती के वरद पुत्र महाप्राण निराला का जन्म 1899 ई. में और उनका देहावसान 1961 ई. में हुआ। समाज के प्रति गहरी जागरूकता निराला जी के जन्मदात स्वभाव का एक विशिष्ट अंग था बाल्यावस्था से ही वह व्यापक जीवन की समस्याओं के प्रति जागरूक हो चले थे। निराला ने जिस भूमि पर जन्म लिया था वहाँ वर्णगत संकीर्णता का भेद बड़ा प्रबल था। समाज में बाल विवाह, दहेज प्रथा, पर्दाप्रथा, वर्णगत भेद जैसी अनेक कुप्रथाएँ समाज में व्याप्त थी। यह भेद केवल हिन्दू–समाज में ही न था, मुसलमानों का सामाजिक जीवन भी ऊँच–नीच वाले भेदभाव से प्रभावित था। अपने 'चोटी की पकड़' नामक उपन्यास में निराला ने उन्हीं तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक उथल–पुथल का परिचय दिया। 'परिमल' में सामाजिक चेतना की अनेक रचनाएँ संकलित है, जिनमें 'विधवा', 'भिक्षुक', 'दीन', 'बादल राग', 'जागो फिर एक बार', 'महाराज शिवाजी का पत्र' आदि प्रमुख हैं। दोनों पर हो रहे उच्च वर्ग के अत्याचारों का सजीव वर्णन निराला ने अपनी 'दीन' नामक रचना में किया हैं। अनामिका की 'सरोज–स्मृति' शीर्षक रचना में ढोंगी ब्राह्मणों दहेज प्रथा और बेमेल विवाह को बुरा बताकर प्राचीन रूढ़िग्रस्त विचारों का खण्डन किया गया हैं। इसी संकलन की रचना तोड़ती पत्थर में गरीब वर्ग के आर्थिक अभाव का मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया गया हैं। साथ ही श्रम के महत्व का निरूपण भी इस रचना में बड़े प्रभावपूर्ण ढंग से किया गया हैं। 'कुकुरमुत्ता' में निराला ने धनी व्यक्तियों के प्रति व्यंग्य किया हैं। इस रचना में प्रमुख कथ्य यही है कि सर्वहारा वर्ग ही धनी व्यक्तियों की स्मृद्धि की नींव है, किन्तु फिर भी उसे हेय दृष्टि से देखा जाता हैं।

'वह रहा एक मन और राम का जो न थका।'

राम की शक्ति–पूजा से पहले निराला ने अपने इस दूसरे मन को न पहचाना था। तुलसीदास का एक ही मन है जो पुराने संस्कारों पर मुग्ध होता है, उनसे लड़ता है। सरोज–स्मृति के निराला का एक ही मन है जो गर्व करता है कि ज्योतिस्तरणा के चरणों में रहकर उसने प्रकाश देखा है, स्वयं को निरर्थक पिता होने के लिए धिक्कारता है और अन्त में अपने गतकर्मो से कन्या का तर्पण करता है, किन्तु राम की शक्ति–पूजा में राम के दो मन हैं, संघर्ष और तीव्र हो गया है।"[1]

"निराला के राजनीतिक दृष्टिकोण की क्रान्तिकारी विशेषता दूसरे महायुद्ध के दौरान और उसकी समाप्ति पर लिखी अनेक कविताओं में दिखाई देती है।"[2]

मिल–मालिकों, जमींदारों और अंग्रेजों के हृदय परिवर्तन द्वारा मिलने वाली आजादी के प्रति निराला और कांग्रेसी नेताओं के दृष्टिकोण में मौलिक अन्तर था और वह अन्तर कविताओं में देखा जा सकता है।

निराला आधुनिक कवि हैं, इसलिए उनकी भक्ति–भावना में ईश्वर और मानव का संबंध आधुनिक चेतना से प्रभावित है। आधुनिकता में 'मनुष्य का ईश्वरीकरण' नहीं ईश्वर का मानकीकरण होता है। निराला अपने प्रिय कवि तुलसीदास की तरह राम को आराध्य बनाते हैं किन्तु उसमें ईश्वरत्व की मात्रा बेहद कम करते हुए उन्हें ज्यादा से ज्यादा मानवीय रूप प्रदान करते हैं। यही कारण है कि शक्तिपूजा के राम कई मानवोचित कमजोरियों जैसे विकलता, संशय, पराजय–बोध आदि से भरे हैं, स्पष्ट है कि यह भक्ति–भावना मध्यकालीन नहीं, आधुनिक मानसिकता के अनुकुल है।

निराला शैव शाक्त तथा वैष्णव तीनों परंपराओं से जुड़े रहे हैं और उन्होंने तीनों में समन्वय भी स्थापित किया है। अपने प्रिय कवि तुलसीदास के समान उन्हें भी

वैष्णव परंपरा में 'राम' सर्वाधिक प्रिय हैं। ज्ञातव्य है कि अपने जीवन के अंतिम दिनों में निराला भक्ति–भावना में डूबे रहे थे और वह भक्ति मूलतः वैष्णव परंपरा पर ही आधारित थी। कविता में शाक्त परंपरा को भी महत्व दिया गया है क्योंकि निराला के राम 'शक्ति' की ही पूजा करते हैं। निराला ने 'राम की शक्तिपूजा' कविता के माध्यम से भक्ति और योग में समन्वय भी स्थापित किया है। इस दृष्टि से वे अपने प्रिय कवि तुलसीदास से भी दो कदम आगे निकल जाते हैं। तुलसीदास में समन्वय का अपार धैर्य था किन्तु योग के प्रति उनकी कड़वाहट बार–बार उभरती नजर आती है, जैसे– 'गोरख जगायो जोग, भगति भगायों लोग' आदि कथनों में इस दृष्टि से निराला कबीर की परंपरा का अनुसरण करते हैं और भक्ति व योग को मिलाकर एक कर देते हैं। ऐसा इस कविता में दो स्थानों पर दिखता है। प्रथम हनुमान का योग और भक्ति दोनों के ही चरम स्तर पर दिखाया गया है। द्वितीय, राम ने शक्ति की कल्पना अपने से बाहर की है, जो भक्ति का तरीका हैं, किंतु उसकी, साधना के लिए षटचक्रभेदन की विधि को चुना है जो योग के अनुकूल है। राम की शक्ति पूजा के राम में सीता के प्रति जो गहरा एवं एकनिष्ठ प्रेम दिखाई देता है, वह भी निराला के एक एकनिष्ठ गार्हस्थिक प्रेम का ही प्रक्षेपण है। मनोहरा देवी के प्रति निराला के प्रेम की एकनिष्ठता का ही परिणाम था कि वे अपनी जन्मकुंडली में लिखे दो विवाहों की घोषणा को भी दृढ़ संकल्प से खंडित करते हैं। यही एकनिष्ठता राम में भी है जो सीता की मुक्ति का आधार रही है–

'जानकी हाय उद्धार प्रिया का हो न सका' – राम की शक्ति पूजा 'खण्डित करने की भाग्य अंक, देखा भविष्य के प्रति अशंक' – सरोज स्मृति "पर सरोज की माँ नहीं है। माँ के दायित्वों का निर्वाह पिता ने ही किया है। इस सरोज के यौवनागम का वर्णन निराला ने जैसे सधे हाथों पहले किया है, वह किसी भी युग में अतुलनीय है।"[3]

राम की शक्ति पूजा की बड़ी समस्या यह है कि अन्याय जिधर है शक्ति उसी तरफ है। शक्ति का अन्याय के पक्ष में होना निराला के जीवन की समस्या भी है। राम की शक्ति पूजा में रावण समस्त वैभव से संपन्न है जबकि राम वनवास में होने के कारण सुविधाओं से वंचित हैं। साथ ही, महाशक्ति भी अन्यायी रावण के साथ हैं। निराला के व्यक्तिगत परिवेश में भी शक्ति अन्याय के पक्ष में है। यह अन्याय मुख्यतः आर्थिक क्षेत्र में है और यही निराला के जीवन का मूलभूत संघर्ष है –

''अन्याय जिधर है उधर शक्ति' – राम की शक्ति पूजा 'लख कर अनर्थ आर्थिक पथ पर, हारता रहा मैं स्वार्थ समर'' – सरोज स्मृति इन आर्थिक संघर्षों के साथ निराला साहित्यिक जीवन में भी अन्याय के शिकार हैं। 'सरोज–स्मृति' में निराला जीवन के संघर्षों से नहीं जीत पाए थे, इसलिए उनमें पहली बार निराशा व पराजय का स्वर दिखता है, राम की शक्ति पूजा में निराला राम बनकर पुनः विजयी हुए हैं और इस रूप में यह कविता राम की विजय यात्रा के साथ–साथ निराला की भी विजय यात्रा है, इस रूप में पुरुषोतम नवीन स्वयं निराला है जो नई शक्ति व नए ओज से युक्त हैं।

"रावण अशुद्ध होकर भी यदि कर सकता त्रस्त
तो निश्चय तुम हो सिद्ध करोगे उसे ध्वस्त।"

निराला हमेशा संघर्षों से जूझते रहे, वैसे ही राम भी। अनुष्ठान की पूर्णता के नजदीक देवी दुर्गा का अंतिम फूल उठा के ले जाना ऐसे ही अंतिम संघर्ष का परिचायक है। निराला के जीवन में मनोहरा देवी का साथ छूट जाना, फिर आर्थिक अभावों के कारण सरोज का चले जाना और महान रचनात्मक के बावजूद साहित्य–क्षेत्र में स्वीकृति न मिलना–ये सभी संघर्ष मिलकर निराला को उस भाव–भूमि पर ले जाते हैं जहाँ कोई भी व्यक्ति आत्मधिक्कार की अवस्था में आ जाता है। ऐसी स्थिति में निराला के राम या स्वयं निराला चीत्कार कर उठते है–

धिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध,
धिक् साधन जिसके लिये सदा ही किया शोध।

सरोज स्मृति हिन्दी कविता में शोकगीत के रूप में

सृजित है। इस रचना का आरम्भ और समापन स्मरण और देहावसान के स्मरण से है, इस कविता में निराला के उस व्यक्तित्व का दर्शन होता है जिसमें वे कर्मण्ड या धनार्जन में अक्षम नहीं थे। वे अपनी बेटी को सब कुछ देना चाहते थे लेकिन उसे कुछ दे पाने का भाव अर्थात् उनकी अन्तरंग पीड़ा इस कविता में दिखलाई देती है–

धन्य, मैं पिता निरर्थक था,
कुछ भी तेरे हित न कर सका।[4]

निराला ने शोक को यानी दुःख को मानवीय संघर्ष के साथ जोड़ा है। इसीलिए यह एक शोक गीत नहीं है। सरोज स्मृति की अभिव्यक्ति है और व्यथा के यथार्थ की भी अभिव्यक्ति। इसीलिए यह कविता निराला के दुःख की स्मृतिगाथा भी है और संघर्ष की इतिहास गाथा भी।[5]

इस कविता में स्मृति चित्रों के आकलन और प्रस्तुतिकरण में निराला जी के आत्मसंघर्ष को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। 'निराला ही हैं, जो परिणीता कन्या के रूप का खुलकर वर्णन करते हैं और यह कहना नहीं भूलते कि 'पुष्प–सेज तेरी स्वयं रची। है किसी कवि में इतना साहस और संयम।'[6]

इस प्रकार निराला जी ने जिस व्यावहारिक वेदान्तिक विचारधारा को अपनाया था, उससे प्रेरित होकर वह जहाँ शोषण–मुक्त समाज की व्यवस्था का स्पप्न देखते थे, वहीं अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में वह हिंसा का बहिष्कार और विश्व शान्ति स्थापित करने का समर्थन भी करते थे। उनका विचार था कि समाज में व्याप्त विषमताओं और विसंगतियों का मूल कारण युगानुरूप सांस्कृतिक चेतना का गहरा अभाव है, अपने विपुल साहित्य के द्वारा उन्होंने उसी युगानुरूप सांस्कृतिक चेतना को जगाने का प्रयास किया। उनके साहित्य का स्वर मानवीय एकता है।

सहायक शिक्षक,
उत्क्रमित 2 उच्च विद्यालय, दिगवार,
दारू, हजारीबाग (झारखण्ड)
मोबा. 9835525020, 7991160409

संदर्भः–

1. शर्मा, रामविलास, निरालारू राग विराग. पृ. 13.
2. वही. पृ. 17.
3. चतुर्वेदी, रामस्वरूप. आधुनिक कविता यात्रा इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, पृ. 51.
4. निराला. अपरा. इलाहाबादरू भारतीय भण्डार, पृ. 147.
5. डॉ. ए. अरविन्द्रक्षण (संपादक). निराला एक पुर्नमूल्यांकन. हरियाणारू प्रकाशन .पंचकुला, 2006, पृ. 117.
6. सिंह, डॉ. नामवर. छायावाद. आठवीं संस्करण–2007, पृ. 20.

Experiences of being 'the Dalit' : An Analysis of Urmila Pawar's *The Weave of My Life, A Dalit Woman's Memoirs*

- Ripunjoy Bezbaruah

In his *Preface* to *Dalit Politics and Literature* (2017), Jai Sankar Prasad writes, "The last quarter of the twentieth century reflected tremendous changes in the Indian Political system and represented political assertions by new social forces. Dalit literature, or literature about the Dalits, an oppressed Indian caste under the Indian caste system, forms an important and distinct part of Indian literature. Dalit literature emerged in the 1960s, starting with the Marathi language, and soon appeared in Hindi, Kannada, Telugu and Tamil languages, through narratives such as poems, short stories, and, most,

autobiographies, which stood out due to their stark portrayal of reality and the Dalit political scene. Dalit literature denounced as petty and false the then prevailing portrayal of life by the Sadashiv Pethi literature which lacked mention of the object poverty-stricken lifestyle of the Dalits and the utter oppression the Dalits faced, at that time, from the higher castes." (vii) Even in some texts, it is clearly stated that the Vedas are the planned texts to subdue the Sudras: they became the rules for caste based discrimination in Hindu society. The sufferings of the lower caste people or the sudras had been found since time immemorial.

Raj Kumar in his *Dalit Literature and Criticism* (2019) significantly writes," Broadly speaking, the word 'Dalit' is a political term which symbolizes the relatively new identity of a group of people who were earlier known as 'untouchables'. Untouchability is a deep ingrained consequence of the caste system and is an unacceptable and hurtful social practice. It was abolished when the Indian Constitution came into effect in 1950. Inspite of its legal abolition, untouchability continues to be practiced in different forms and degrees in almost all parts of India even today. Thus, the term 'Dalit' clearly suggests that caste system as a social system is still prevalent in India. Dalits are struggling hard to reclaim their human dignity and self- respect. The rise of Dalit movements and Dalit literature is an example of how Dalits have become a new political community. Through their writings and activities they have been speaking truth to power." (1)

In spite of different forms of social and physical tortures, Dalits are now aware of their rights to lead a dignified life and it is the reason why they are challenging and questioning the hegemony of the upper caste and power structures of the country. The emergence of Dalit literature as part of the Dalit freedom movement is the robust opening of their protest against the human rights and practice of human rights in the country. We can thematically refer to many texts of early India where we find the reflections of Dalits and their lives. But in post-independence India, the educated Dalits found the alternative way to raise their voice through a new literary movement. Dalit writers are not only

addressing the issues of social evils and atrocities but also protest against all social misfortunes that they are experiencing since last few decades.

Urmila Pawar's *The Weave of My Life (2019)* is not like other Dalit autobiographies as it does not accept the norms of autobiography from a general point of view. "It is a complex narrative of a gendered individual who looks at the world initially from her location within the caste but who also goes on to transcend the caste identity from a feminist perspective. It captures effectively the transition of the Mahar community, rooted geographically in the agrarian and rural areas of the Konkan region, into a people relocated in urbanized spaces like Mumbai, with a more 'modern' sensibility. The journey demonstrates how the lineages of suffering in the past branch out in myriad different ways in the present as a result of the logic of 'development, modernity and progress' followed in the past- Nehruvian era in India, taking into account the exploitative and hegemonic ideologies of caste, patriarchy, class and gender." (Pawar,Urmila. Introduction. *The Weave of My Life*, by Maya Pandit, Stree, 2019, pp. xvii)

In both the public and private domains, dalits are forced to experience poverty, unemployment, caste discrimination, sexual violence and even physical tortures by the so-called upper caste people of the Indian society. They were debarred to avail the public facilities like temple, hotels, tube wells or equal treatment in education. In villages, they are compelled to lead subhuman lives and in urban places like Mumbai, they have to live on the banks of gutters or slums as Urmila Pawar described in her autobiography. The mean jobs were allotted to them without job security. They were even paid less for their works. The conditions of Dalit women are treacherous. They were exploited in their homes and outside their homes as well. They were exploited as the 'Dalit' and as 'Dalit women' also. Even children were not properly treated at schools:

"Some Mahar children also went to school but they had to sit outside in the courtyard. The teachers taught them and examined their slates, from a distance. They would hit the children with stones if they made any mistakes." (17)

She further states that the houses of the Marathas and the Brahmins were at some distance from Urmila's house. Bhandari and Kulwadi women could drink water from their wells but untouchable women were absolutely forbidden to take water from their wells. In his *Foreword* to *Dalit Men's Autobiographies: A Critical Appraisal* (2017), Bijender Singh comments, "The naked truth is also that the Dalit litterateurs, while keeping themselves in the centre stage of their autobiographies, projected more prominently the social, religious and economic conditions of their entire Dalit community. Often Dalit autobiographers wrote about the conditions which they themselves had undergone. They did not use the flowery language like the autobiographers belonging to upper castes but portrayed with logic the inhuman situations, the excesses being perpetrated against them, coercion and physical exploitation along with blind faith, fallacy, prudery, rituals and pomposity." (15)

The autobiographer recollects one of the incidents that was directly linked with the caste discrimination and abuse. She had booked a room for her family but even after several attempts, the room was not handed over to them. When they demanded for the room, they were abused: "Finally when they realized that it was their own mistake, they began to abuse us! 'These are low caste people! So what else can you expect from them? Look at their things! A tin cot and cheap pots and pans! The moment we saw their things, we knew what they were! Dirty, mean, uncivilized…!' We had to listen to all these insults, though it was not our fault, while people in the building enjoyed watching the whole scene." (224)

In her office, others were jealous to her for her increasing name and fame though she belonged to the Dalit community. Actually from a feminist landscape, her endeavour to establish her voice prominently is a 'slap' on the so- called social systems of the society and her emerging as a figure in the public domain was not only a way to speak to the power of the authority but also a fruitful attempt to establish a way to revolt against all social discriminations that the Dalits had experienced. She of course regretfully writes: "One thing was however, very

clear to me. Women's issues did not have any place on the agenda of the dalit movement and the women's movement was indifferent to the issues in the dalit movement. Even today things have not changed! " (260)

According to her, people of upper caste criticized Dr. Ambedkar for converting his religion but did never understand his ideologies. "It was difficult to believe that they did not know how Dr. Ambedkar had coaxed his wife into getting education. And yet they were so critical of Dr. Ambedkar! Because of Dr. Ambedkar's conversion, and dalit literature's attack on Hinduism, they had chosen to retaliate and attack Ambedkar rather than subject Hinduism to a critical scrutiny and be self- reflexive." (261)

"Dalits, she argues, are those oppressed and humiliated by the social system and who stand in rebellion against it as rational- humanists. This consciousness of being thinking individuals, she believes, has come to the dalit community from the Phule-Ambedkarite movement." (Rege 346)

The Hinduism and its varna system are actually largely responsible for the creation of Dalit class and their sufferings. "And birth was in turn conceived as being inevitably founded upon deeds of the previous births (Karma), upon the good or evil actions of previous lives and upon divine justice." (Deivasigamani 59)

Literally, it was Dr. Ambedkar who gave the Dalits their 'minds' to understand and move ahead with their voice. The basis of Indian caste system is exploitation: exploitation in all senses. The Dalit's life is a life of poverty, starvation, ignorance, injustice and these make them the 'subhuman'. Hence, Dalit literature exists and it will play a major role in the social movement of Dalits to destroy the dogmatic stereotyped social structure that dictates misfortunes to the Dalits. "With the chaturvarnic order, the Indian caste society gradually came to be established in between 500 BC AD 500 period. It is during this period that many caste laws and restrictions were made for the shudras to keep them permanently away from the so- called dwija society and degrade them to the position of virtual slaves without rights of citizenship. The caste rules were mostly made by the Brahmans with the active support of the orthodox

Kshatriya Kings. The dominant characteristic of all the caste rules was to suppress the shudras by prohibiting them from all knowledge and status, a process that continued for quite a long time. Thus, the caste scheme proved to be very effective instrument of domination and exploitation." (Kumar 121)

But yes, with the changing scenario of education and technology, Dalits are no longer the illiterate class. Like Urmila Pawar, most Dalits are now conscious of their human rights and giving voice to the torments they had experienced by the help of different platforms being production of literature alone is more universal in nature for ever enduring effects on readers of different classes. Hence Dalit literature is not only the representation of oppression but also the representation of their voice to the system of power to force them to listen and rationalize their demands. The subjugation of Dalits is non- human and it is not the creative dictation but a creation of one class people to rule over the other. Dalits, as a result, at present, condemn this tenacious tendency of the upper caste people.

1 Assistant Professor, Dept. of English
Bongaigaon College, Assam-783380
Mob. 7002686447

Bibliography:

Deivasigamani, T, editor.. *Dalit Literature*. Trinity Press, 2016.

Dangle, Arjun, editor. *Poisoned Bread*. Orientblackswan pvt. Ltd, 2020.

Giri, Dipak, editor. *Perspectives on Indian Dalit Literature: Critical Responses*. Books Clinic Publishing, 2020.

Jogdand, P.G., editor. *Dalit Women : Issues and Perspectives*. Gyan Publishing House, 2018.

Kumar, Satendra. *Socio-Political Concerns in Dalit Literature: A Critical Survey*. Yking Books, 2012.

----------. *Critical Essays on Dalit Literature*. Yking Books, 2016

Kumar, Raj. *Dalit Personal Narratives*. Orient Blackswan Pvt. Ltd., 2017.

----------. *Dalit Literature and Criticism*. Orient Blackswan Pvt. Ltd., 2019

Prasad, Jai Shankar. *Dalit Politics and Literature*. Centrum Press, 2017.

Purushotham, K, editor. *Ahead of their Times: Essays on Women Autobiography in India*. Kalpaz Publications, 2020.

Pandit, Maya, translator. *The Weave of My Life*. By Urmila Pawar, STREE, 2019.

Rege, Sharmila, editor. *Writing Caste/ Writing Gender*. Zubaan, 2006.

Sharma, Pradeep K. *Dalit Politics and Literature*. Shipra Publications, 2011.

Singh, Bijendra, editor. *Dalit Men's Autobiographies: A Critical Appraisal*. Kalpaz Publications, 2017.

----------. *Dalit Women's Autobiographies: A Critical Appraisal*. Kalpaz Publications, 2016.

'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में नारी सशक्तिकरण

– रश्मि सिंह (शोधार्थी)

सारांश :–

हिंदी साहित्य के सुप्रसिद्ध कथाकार – उपन्यासकार रणेन्द्र के 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में आदिवासी जीवन के विविध आयामों पर प्रकाश डाला गया है। असुर आदिवासी समाज में नर और नारी दोनों का एक समान स्थान प्राप्त है, जहाँ नारी न तो अबला होती है, और न ही श्रद्धा होती है, और न ही रक्षणीय होती है, बल्कि यहाँ नारी सियानी होती है अर्थात् समझदारी की प्रतीक के रूप में दृष्टिगत होती हैं। 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में ऐसे ही सशक्त नारी पात्र है बुधनी दी जो चाय की गुमटी चलाती और आर्थिक रूप से सशक्त बनती है तथा जब असुर आदिवासी समाज के अस्तित्व पर खतरा मंडरा रहा है तो ऐसे में वह बढ़–चढ़कर आन्दोलन का नेतृत्व करती है। ऐतवारी भी आन्दोलन में अपना महत्वपूर्ण योगदान देती है। इस उपन्यास की सबसे सशक्त नारी पात्र है ललिता जो कि उच्चशिक्षित है। वह अपने समाज के लोगों को बाहरी समाज के शिवदास बाबा एवं पांडे बाबा जैसे धूर्त व्यक्तियों से सचेत करती है, जिनके द्वारा असुर आदिवासी समाज को ठगा जा रहा है। साथ ही आन्दोलन की बागडोर अपने हाथों में संभालती है जिससें वह अपने समुदाय, अपने क्षेत्र के लोगों की आवाज बुलंद करती है। 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास की ये सशक्त नारी पात्र विभिन्न कंटकाकीर्ण परिस्थितियों से उलझती हैं, कठिन संघर्ष करती हैं और कभी भी हार नहीं मानती।

बीज शब्द–नारी, सशक्त, आन्दोलन, संघर्ष, आदिवासी, असुर।

प्रस्तावना :–

"महिला सशक्तिकरण सत्त रूप से चलने वाली ऐसी सामाजिक प्रक्रिया है जिसमें महिलाओं को सर्वसम्पन्न एवं विकसित होने हेतु पर्याप्त अवसर मिल सके। उन्हें पुरुषों के बराबर वैधानिक, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, शारीरिक एवं मानसिक क्षेत्रों में निर्णय लेने के प्रति होने वाले भेदभाव को समाप्त करके उन्हें आत्मनिर्भर एवं स्वालंबी बनाया जा सके।"[1]

"वैदिक युग में लिंग समानता थी। यह युग नारी तथा नर के अधिकारों की दृष्टि से स्वर्णिम युग कहा जाता है क्योंकि इस युग में स्त्रियों को पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त थे। स्त्रियों को शिक्षा ग्रहण करने, वेदों का अध्ययन करने, धार्मिक कर्मकाण्डों में भाग लेने तथा संस्कार कराने का अधिकार प्राप्त था।"[2] उत्तर वैदिक काल से नारी की स्थिति में गिरावट आनी शुरू हो गयी। वही मध्यकाल में अनेक कुरीतियों जैसे– सती प्रथा, बहुपत्नि विवाह, बालिका वध, विधवा विवाह पर प्रतिबंध तथा पर्दा प्रथा ने नारी जीवन को नारकीय बना दिया।वर्तमान समय में महिलाएं प्रत्येक क्षेत्र में अपनी प्रतिभा कौशल के बल पर परचम लहरा रही हैं। चाहे वह विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का क्षेत्र हो या फिर पुलिस, रक्षा, तकनीक, चिकित्सा, प्रबंधन या फिर खेलकूद सभी जगह अपनी प्रतिभा से अपनी पहचान बना रही हैं। समकालीन साहित्यकारों के लेखन में नारी जीवन की पीड़ा, कसक, कुंठा, संत्रास एवं आक्रोश के स्वर सुनाई

देने लगे जहां नारियाँ सशक्त होकर अत्याचारों का विरोध करती दिखाई पड़ती है।

रणेन्द्र ने अपने उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता' में नारी की भागीदारी का बखूबी चित्रण किया है। इस उपन्यास में नारी किसी भी दृष्टि से पुरुष से कमतर नहीं है बल्कि इस उपन्यास में नारी बहुत ही सशक्त रूप में दिखलाई पड़ती है। 'ग्लोबल गांव के देवता' उपन्यास एक प्रकार से आंचलिक उपन्यास के रूप में हमारे सामने आता है, जिसमें अनेक पुरुष एवं नारी पात्र देखने को मिलते हैं। इस उपन्यास के तीन बहुत ही सशक्त नारी पात्र के रूप में सामने आती हैं।

बुधनी दी जिसका विवाह एक मंदबुद्धि व्यक्ति से होता है। बुधनी दी के पति अपने परिवार के पालन पोषण करने में पूरी तरह सक्षम नहीं है ऐसे में बुधनी दी बहुत ही साहस के साथ अपने परिवार के जीवन यापन के लिए चाय बागान में काम करने के लिए असम–भूटान चली जाती है। "चार–पांच साल पहले बुधनी अपने गोमके (मर्द) और बाल बच्चे के साथ असम–भूटान निकल गए कई तरह के काम धंधे किए डिब्रूगढ़ के शिव सागर के चाय बागान के पास उसकी चाय गुमटी चल निकली थी।"[3] बुधनी दी अपने पति एवं बच्चों के साथ रहते हुए अपने काम में मशगूल थी तभी एक रात अचानक वहाँ भाषा के नाम पर दंगा भड़का जिसमें चाय बागान में काम करने वाले, हिंदी बोलने वाले मजदूरों को वहाँ से भागना पड़ा। "सब ठीक–ठाक ही चल रहा था कि हिंदी बोलनेवाले एकाएक वहाँ पराये हो गये। रात में चाय बागान कॉलोनी में गोलियाँ बरसने लगी। काली रात, स्याह, गर्म, कोलतार के नदी में बदल गयी। देखते–देखते कॉलोनी के जवान–जहान देह निर्जीव लकड़ी के लट्ठे से गर्म –खौलते कोलतार की स्याह नदी में डूबने–उतरने लगे। उस रात की कोई सुबह ही नहीं हुई।"[4] ऐसे में बुधनी दी अपने जमे जमाए काम को छोड़ने के लिए मजबूर हो जाती है तथा वापस अपने गाँव आ जाती है। कुछ दिनों बाद वह फिर से चाय–नाश्ते की गुमटी खोलती है। उसके कुछ समय बाद कोयलबीघा अंचल में बॉक्साइट खदानों में काम करने वाले श्रमिकों, मजदूरों तथा पाट के ग्रामीणों के द्वारा खदानों में काम रोकने के लिए बहुत बड़ा आंदोलन किया जाता है, जिसमें बुधनी दी सबसे आगे बढ़कर आंदोलन का नेतृत्व संभालती है।

ऐतवारी 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में एक सशक्त नारी पात्र के रूप में सामने आती है। ऐतवारी पीटीजी गर्ल्स रेजिडेंशियल स्कूल भौंरापाट में पिऊन के पद पर कार्यरत है। कोयलबीघा प्रखंड के बॉक्साइट खदानों के खनन कार्य को रोकने के लिए जो आन्दोलन चलाया जाता है उसमें ऐतवारी सक्रिय रूप से अपनी उपस्थिति दर्ज करवाती है, जिसमें ऐतवारी, बुधनी दी के साथ संघर्ष समिति का बैनर लिए सबसे आगे–आगे चलती है। "ग्रामीणों, आदिवासियों, मजदूरों का इतना बड़ा जुलूस इस शहर ने आज तक नहीं देखा था।"[5] यह आन्दोलन इतना प्रभावशाली था कि इससे न केवल कोयलबीघा अंचल के खदानों में खनन कार्य ठप हो गया बल्कि पाट के 30–40 खदानों में मजदूरों ने काम रोक दिया। इससे ग्लोबल गाँव के देवताओं में खलबली मच जाती है। शिंडालकों कंपनी का मैनेजर श्री किशन कन्हैया पांडे षड्यंत्र रच कर आन्दोलन में दरार डाल देता है। रात में ही दर्जनभर आन्दोलनकारी नायकों को गिरफ्तार कर लिया जाता

है। जिसके परिणाम स्वरूप हजारों की संख्या में इकट्ठे होकर थाना का घेराव एवं धरना–प्रदर्शन करते हैं। पुलिस द्वारा प्रदर्शनकारियों पर गोली चलाई जाती है जिसमें बालचन समेत छह लोगों को अपने प्राण न्योछावर करना पड़ता है।

ललिता इस उपन्यास की एक बहुत ही सशक्त नारी पात्र है, वह उच्च शिक्षित है। उसने इतिहास विषय से एम. ए. की पढ़ाई पूरी की है। ललिता जब सातवीं कक्षा में पढ़ती थी तभी उसके माता–पिता दोनों मलेरिया के कारण काल के गाल में समा गए। एक दिन जब ललिता अपनी दोनों चचेरी बहनों कविता एवं नमिता से उसके कोयलेश्वर आश्रम के आवासीय स्कूल में मिलने जाती है, तो वह दोनों बहनों को देखते हैं उसकी चेहरा देखकर समझने में देरी नहीं लगाती है कि इस फूल से कोमल बच्चियों के साथ इस विद्यालय में शिक्षा के नाम पर किस तरह से इनका शारीरिक एवं मानसिक शोषण किया जा रहा है। ललिता अपनी दोनों बहनों को घर ले आती है, एवं अपनी चाची से उस विद्यालय में बच्चियों को पढ़ने के लिए भेजने से मना करती है। ललिता दोनों बहनों का नामांकन भौंरापाट आवासीय विद्यालय में करवाती है। ललिता शिवदास बाबा जैसे ढोंगी, दुराचारीओं से अपने परिवार एवं समाज को सतर्क भी करती है। असुर समुदाय के लोगों को एक के बाद एक घटने वाली घटनाओं ने तोड़ कर रख दिया था। संघर्ष समिति के नेतृत्व करता पाट क्षेत्र से पलायन कर गए थे, लेकिन आषाढ़ के महीना लगने पर खेती–पथारी के कारण लोग पाट क्षेत्र में लौटने लगे थे। एक दिन पाट क्षेत्र के लोगों के खतियान में दर्ज 37 वन गाँवों को खाली कराने की नोटिस दी जाती है, जिसमें यह निर्णय लिया जाता है कि बिना मुआवजा एवं पुनर्वास के इन सभी 37 गाँवो को खाली नहीं किया जाएगा। तभी मुआवजा एवं पुनर्वास के लिए बातचीत के लिए जाने के क्रम में ललिता, बुधनी दी, ऐतवारी, गन्दूर, लालचन दा के बाबा एवं अन्य सभी 10 लोगों को लैंड माइंस का शिकार होना पड़ता है। वे सभी अपने प्राणों से हाथ धो बैठते हैं। इस खबर से ग्लोबल गाँव की देवताओं में खुशी की लहर दौड़ जाती है। इस आंदोलन का नेतृत्व करने के लिए सुनील असुर अपने विश्वविद्यालय से कोयलबीघा पाट के लिए आता है।

निश्कर्शः– 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास कमजोर लोगों की ऐसी आवाज है जो सदियों से दवाई जाती रही है इस उपन्यास के सारे पात्र ललिता, बुधनी दी, ऐतवारी सभी अन्याय का विरोध करती हैं तथा किसी भी परिस्थिति में समझौता नहीं करती उनके आगे झुकते नहीं है बल्कि बहुत बड़ा संघर्ष करती है तथा अपनी जान देने से भी पीछे नहीं हटती।

हिन्दी विभाग
आर. के. डी. एफ. विश्वविद्यालय
कटहल मोड–आरगोड़ा–राँची रोड
पानी टंकी के सामने, दीपा टोली,
पुन्दाग, राँची–834004 (झारखण्ड)
मो. :–8434600606

संदर्भः–

1. सिंह, डॉ. शशिकला महिला सशक्तिकरण, इंस्टिच्यूट फॉर सोशल डेवलपमेंट एंड रिसर्च रांची, प्रथम संस्करण 2014 पृष्ठ – 10
2. शर्मा, डॉ सुधा , साहित्य में नारी का बदलता स्वरूप, अनुराधा प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृष्ठ– 89
3. रणेन्द्र ,ग्लोबल गाँव का देवता, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, छठा संस्करण 2019, पृष्ठ– 29
4 .वहीं, पृ०– 29
5 वहीं, पृ०– 51

मासिक पत्रिका ''आश्वस्त'' के स्वामित्व एवं अन्य विवरण
फार्म –4 (नियम 8 देखिए)

1. प्रकाशन स्थल : 'आश्वस्त' 20, बागपुरा, सांवेर रोड, उज्जैन (म.प्र.)
2. प्रकाशन अवधि : मासिक
3. मुद्रक : पिंकी सत्यप्रेमी
   नागरिकता : भारतीय
   पता : 'आश्वस्त' 20, बागपुरा, सांवेर रोड, उज्जैन (म.प्र.)
4. प्रकाशक : पिंकी सत्यप्रेमी
   पता : उपरोक्तानुसार
5. संपादक : डॉ. तारा परमार
   नागरिकता : भारतीय
   पता : 9–बी, इन्द्रपुरी, सेठीनगर, उज्जैन
6. पत्रिका का स्वामित्व : भारती दलित साहित्य अकादमी मध्यप्रदेश
   उस व्यक्ति संस्था के ''आश्वस्त'' 20, बागपुरा, सांवेर रोड, उज्जैन
   नाम जो समाचार–पत्र
   के स्वामी हो तथा जो
   समस्त पूंजी के 1 प्रतिशत
   के साझेदार या हिस्सेदार हो ।

मैं पिंकी सत्यप्रेमी एतद् द्वारा घोषित करती हूं कि उपरोक्त समस्त विवरण मेरी जानकारी और विश्वास के अनुसार सही है।

हस्ताक्षर
पिंकी सत्यप्रेमी
प्रकाशक

मार्च 2022

राजनीति चले ना चले, सरकार बने ना बने,
सामाजिक परिवर्तन की गति
किसी भी कीमत पर रुकनी नहीं चाहिए।

मान्यवर कांशीराम

पंजीयन संख्या
RNI No. MPHIN/2002/9510

डाक पंजीकृत क्रमांक मालवा डिवीजन/204/2021-2023 उज्जैन (म.प्र.)

प्रतिष्ठा में ,

पत्र व्यवहार का पता :
20, बागपुरा, सांवेर रोड,
उज्जैन 456 010 (म.प्र.)

प्रकाशक, मुद्रक पिंकी सत्यप्रेमी ने भारती दलित साहित्य अकादमी की ओर से
मालवा ग्राफिक्स, 29, वररुचि मार्ग, गुरुद्वारे के सामने, फ्रीगंज, उज्जैन फोन : 0734-4000030 से मुदित एवं
20, बागपुरा, सांवेर रोड, उज्जैन 456 010 (म.प्र.) फोन : 0734-2518379 से प्रकाशित।

सम्पादक : डॉ. तारा परमार